व्ही. युदेनिच

आहत का प्राथमिक उपचार

आहत का प्राथमिक उपचार

В. В. Юденич

Первая помощь при травмах

Москва «Медицина»

व्ले. युदेनिच

आहत का प्राथमिक उपचार

मीर प्रकाशन, मास्को

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड
५ ई, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली-११००५५

राजस्थान पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लि.
चमेलीवाला मार्केट, एम. आई. रोड, जयपुर ३०२००१

अनुवादक : देवेंद्र प्र. वर्मा

V. Yudenich

Accident First Aid

на языке хинди

सोवियत संघ में मुद्रित

ISBN 5-03-000320-7

विषय-सूची

भूमिका

आदमी का जीवन और काम उसके परिवेश के साथ घना संबंध रखते हैं। उद्योग तथा यातायात का विकास, कृषि का यंत्रीकरण और जीवन-गति का सार्विक त्वरण उसके लिये चोट और शारीरिक क्षति की भी परिस्थितियां उत्पन्न करते हैं।

मशीनों के उपयोग में सर्वत्र सुरक्षा-नियमों को विकसित करने के निरंतर सचेत प्रयत्नों के बावजूद काम पर तथा सामान्य दैनंदिन जीवन में लोगों को चोट लगने की बारंबारता अभी भी बहुत अधिक है।

चोट तरह-तरह से लगती है और उसके लक्षण भी अलग-अलग होते हैं। चोट और उससे क्षति के बाद अक्सर निर्विलंब उपचार की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि उसके साथ-साथ गंभीर और घातक जटिलताएं, सहविकार भी विकसित होने लगते हैं। इसीलिये दुर्घटना-स्थल पर ही आहत का यथाशीघ्र उपचार शुरू होना चाहिये और उसे जल्द से जल्द चिकित्सा-संस्थान पहुंचाना चाहिये, जहां कुशल और आवश्यकतानुसार विशिष्ट करोर्जी सहायता (शल्य-चिकित्सीय सहायता) मिल सके।

गंभीर दुर्घटनाग्रस्त आदमी का जीवन और उसकी सफल चिकित्सा अक्सर सही समय पर सही ढंग से किये गये प्राथमिक उपचार पर ही निर्भर करते हैं। सामूहिक दुर्घटनात्मक परिस्थितियों में और आगजनी, भूकंप आदि दैवी प्रकोपों तथा विदेशी सैनिक-आक्रमण के समय स्व- और पारस्परिक उपचार के मूल तत्त्वों का ज्ञान विशेष रूप से आवश्यक होता है। ऐसे अवसरों पर चिकित्सा-कर्मियों की हमेशा कमी रहती है और घायल का जीवन बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि वह और उसके आसपास के लोग अपनी और दूसरों की कहां तक सहायता कर पाते हैं, प्राथमिक उपचार में कामचलाऊ साधनों का उपयोग करना कहां तक जानते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक चोट लगने पर अपनी और दूसरों की सहायता करने की विधियां सीखने में उन लोगों के लिये उपयोगी सिद्ध होगी, जिन्हें आयुर (डाक्टरी) का विशेष ज्ञान नहीं है।

कोष्ठकों में दी गयी सामग्रियां अनुवादक द्वारा आयोजित हैं। आशा है कि वे पुस्तक को सरलतापूर्वक आत्मसात करने में सहायक होंगी।

चोट और प्राथमिक उपचार : मूल अवधारणाएं

चोट शरीर और उसके अंगों की क्षति को कहते हैं, जो तापीय, यांत्रिक, रसायनिक, वैद्युत आदि घटकों की अभिक्रिया से होती है।

एक साथ कई प्रकार की क्षतियां होने पर वे एक-दूसरे को और भी गंभीर बना देती हैं, जिससे घायल की अवस्था बदतर हो जाती है।

दैवी प्रकोपों—भूकंप, आगजनी, उद्योग या परिवहन में दुर्घटना, विदेशी आक्रमण आदि—के समय जब एक साथ अनेकानेक लोग क्षतिग्रस्त हो जाते हैं, उनकी सहायता के लिये सोवियत संघ में जन-सुरक्षा का एक विशेष संगठन सक्रिय हो उठता है, जिसके पास उपचार के अल्पतम साधन सदा तैयार रहते हैं।

सामान्य जीवन में चोटें अक्सर खेत-कारखानों में काम पर, परिवहन में और यहां तक कि खेल में भी लग सकती हैं। वे अक्सर सांयोगिक होती हैं, पहले से बता सकना मुश्किल होता है कि कब, किसको, कहां चोट लगेगी। यही कारण है कि घायलों के लिये पर्याप्त कुशल चिकित्सा जुटा पाना संभव नहीं होता और दुर्घट-

ना-स्थल पर किसी तरह आपस में ही एक दूसरे की सहायता से काम चलाना पड़ता है।

प्राथमिक उपचार वही करता है, जो घायल के निकट होता है।

यदि सहायता कोई ऐसा आदमी पहुंचा रहा है, जो चोट लगने के वक्त वहां मौजूद नहीं था, तो उसे चोट के सही-सही कारणों, परिस्थितियों तथा सही समय का पता लगाना चाहिये। इससे अक्सर क्षति की प्रकृति को शीघ्र समझने में और उपचार के सही साधन चुनने में सहायता मिलती है। जब घायल बेहोशी के कारण दुर्घटना के बारे में स्वयं कुछ बता सकने में असमर्थ होता है, तब चोट की परिस्थितियों और कारणों को निर्धारित करना विशेष महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

रक्तस्राव, बेहोशी, अभिघात आदि से क्लिष्ट हुई गंभीर चोट की स्थिति में जल्द से जल्द सहायता पहुँचानी चाहिये।

प्राथमिक उपचार सरल साथ ही पर्याप्त कारगर तथा सार्थक युक्तियों के संकुल को कहते हैं, जो घायल की जीवन-रक्षा तथा चोट से संबंधित संभव सहविकारों और जटिलताओं की रोक-थाम के उद्देश्य से प्रयुक्त होती हैं।

प्राथमिक उपचारकर्ता को निम्न बातें आनी चाहिये: क्षति की प्रकृति और गंभीरता निर्धारित करना, आवश्यकतानुसार श्वसन और हृदक्रिया की गड़बड़ी दूर करने के लिये निर्विलंब कदम उठाना, बाह्य रक्तस्राव रोकना,

घाव पर पट्टी बांधना, मोच या टूट (अस्थि-भंग) की स्थिति में अंग को अचल करना, घायल को सही ढंग से उठाना, ढोना, उसके कपड़े उतारना, स्ट्रेचर या गाड़ी पर लादना, आदि।

प्राथमिक आयुरी सहायता पहुँचाने वाले को काम-चलाऊँ साधनों का उपयोग करना भी आना चाहिये, उसे याद रखना चाहिये कि घायल का भाग्य उसकी सजगता और प्रत्युत्पन्नमतित्व पर निर्भर करता है, उपलब्ध सामग्रियों से ही अच्छी तरह काम चलाने की योग्यता पर निर्भर करता है। क्षति की प्रकृति स्पष्ट करने के लिये तथा उसके उपचार के लिये शरीर के क्षतिग्रस्त भाग तक अच्छी पहुंच होनी चाहिये। कपड़े पहले शरीर के स्वस्थ भागों (पैर या हाथ) से उतारना चाहिये, फिर बहुत सावधानी के साथ क्षतिग्रस्त भाग से उतारना चाहिये।

यदि हड्डी टूटने से चोट बहुत गंभीर हो गयी हो, रक्तस्राव रोकना तथा हाथ या पैर को अचल बनाना आवश्यक हो, तो कपड़े को काट डालना चाहिये या सीयनों पर फाड़ डालना चाहिये। जूते या बूट को पिछली एड़ी की सीयनों पर काटना चाहिये। कभी-कभी पट्टी रखने के लिये कपड़े में तदनुरूप नाप की खिड़की काट लेना पर्याप्त होता है।

ढुलाई या परिवहन के समय घायल पर हर हालत में दया करनी चाहिये, इस बात का सदा खयाल रखना चाहिये कि उसे यथासंभव कम दर्द हो, असावधानीपूर्ण
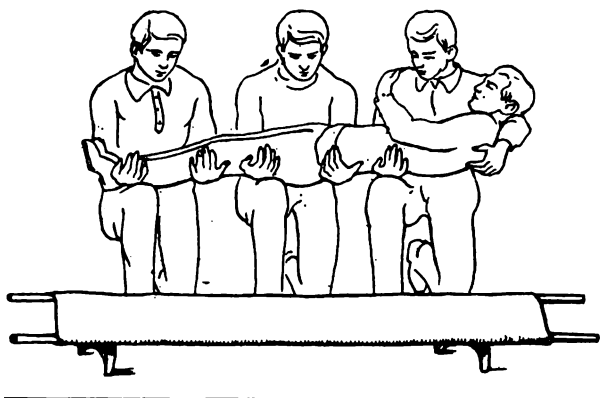
चित्र 1. आहत को तीन आदमियों द्वारा स्ट्रेचर पर रखना।

गति, असुविधाजनक स्थिति या हिचकोलों के कारण उसे अतिरिक्त चोट न लगे।

गंभीर रूप से आहत व्यक्ति को, विशेषकर विभंजन (अस्थि-भंग) या विस्तृत जख्म की स्थिति में, यदि तीन जने मिल कर उठायें, तो अच्छा होगा। चित्र 1 में दिखाया गया है कि कैसे तीन आदमी घायल के पैरों, नितंबों और पीठ को सहारा देते हुए उठा रहे हैं। यह काम एक साथ और बहुत ही सावधानीपूर्वक करना चाहिये, ताकि शरीर का कोई भाग बहुत मुड़े नहीं, या लटकने न लगे। हल्की स्थितियों में या परिस्थितिवश
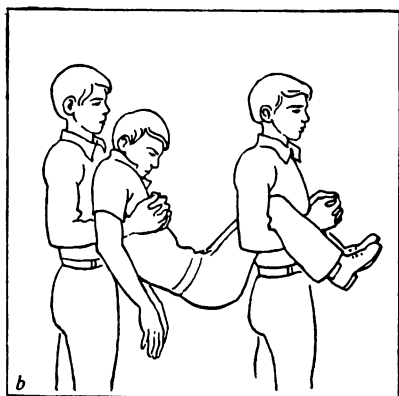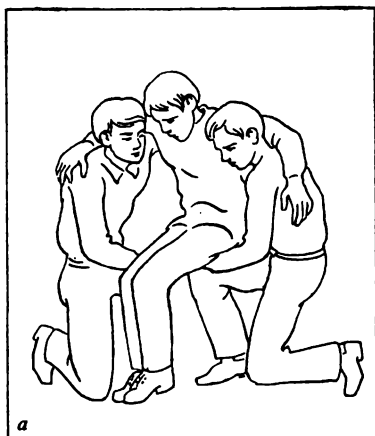
चित्र 2. आहत को दो आदमियों द्वारा ले जाना (*a* – प्रथम विधि, *b* – दूसरी विधि)।
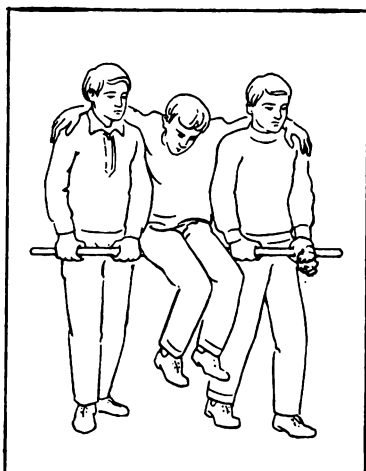
चित्र 3. ग्राहत को लाठी पर ले जाना।
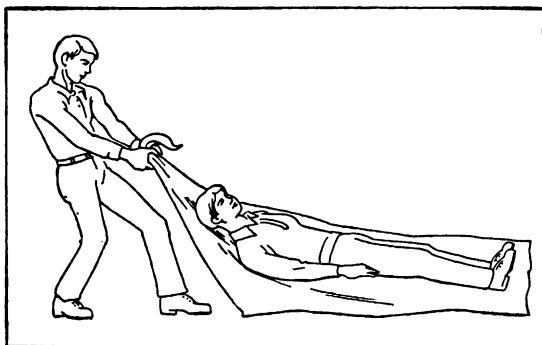
चित्र 4. ग्राहत को कंबल पर ले जाना।
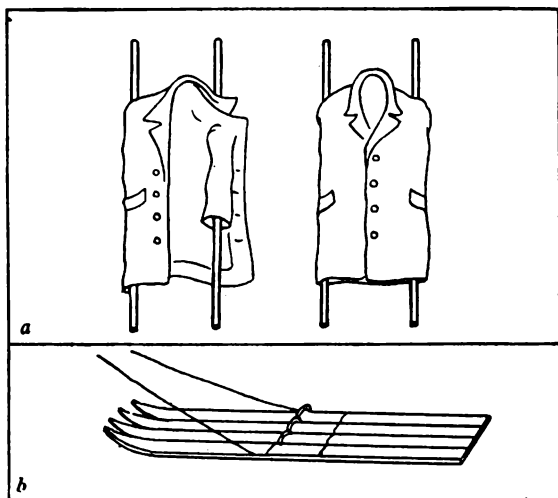
चित्र 5. कामचलाऊं स्ट्रेचर (*a* – कोट से बना हुआ, *b* – तख्तियों से बना हुआ)।

आहत व्यक्ति को एक या दो आदमी भी ले जा सकते हैं। आहत को स्ट्रेचर पर, हाथों पर या लाठी पर भी ले जाया जा सकता है। कोई चारा न होने पर उसे कंबल पर लिटा कर घसीटा भी जा सकता है (चित्र 2–4)। कंबल की जगह एक साथ जोड़ कर बांधे हुए तख्तों का भी उपयोग हो सकता है (चित्र 5b में स्की के तख्ते जोड़ कर दिखाये गये हैं; बर्फीली जगह पर वह हर घर में होता है)।

स्ट्रेचर न होने पर कामचलाऊ स्ट्रेचर बनाया जा सकता है: कोट की बाहें भीतर की ओर उलट कर उसमें एक-एक लाठी घुसा लेते हैं (चित्र 5a)। बोरे में भी लाठी घुसा कर स्ट्रेचर बना सकते हैं।

स्ट्रेचर पर आहत को इस तरह ढोते हैं कि उसका सर गति की दिशा में, सामने की ओर रहे, ताकि उसकी अवस्था पर निगरानी रखी जा सके। यह स्थिति चढ़ाऊ जगह पर ढोने के लिये सुविधाजनक है। ढाल या सीढ़ियों पर उतरते वक्त कोशिश करनी चाहिये कि स्ट्रेचर क्षैतिज स्थिति में ही रहे। जरूरी है कि दोनों ढोने वाले आदमी स्ट्रेचर को एक साथ उठायें या एक साथ रखें।

गंभीर आहत को स्ट्रेचर पर ही ले जाना सब से अच्छा होता है। बड़ी हड्डियों के टूटने पर या गहरा जख्म होने पर आहत को एक स्ट्रेचर से दूसरे पर रखना उसके लिये बहुत कष्टदायक होता है। इसीलिये उसे मंजिल तक एक ही स्ट्रेचर पर लिटाये रखना अच्छा होता है। एंबुलेंस में गंभीर आहत को ले जाने के भी अपने नियम होते हैं। एंबुलेंस में स्ट्रेचर को आहत के सर की तरफ से घिरनियों पर रख कर उसे आहिस्ते से भीतर की ओर बढ़ाते हैं।

एक से अधिक आहतों के लिये विशेष एंबुलेंसें होती हैं, जिनमें स्ट्रेचर एक के ऊपर एक दो-तीन खंदों में रखे जा सकते हैं। पहले ऊपरी खंदे पर स्ट्रेचर रखना चाहिये, फिर बीच वाले पर, फिर अंत में निचले खंदे पर। अधिक घायल व्यक्ति को निचले खंदे पर ही रखना

चाहिये। सर्दियों में ग्राहत व्यक्ति को गर्मी पहुँचानी चाहिये, विशेषकर यदि उसे बहुत अधिक रक्तस्राव हुआ हो या वह अभिघात की अवस्था में हो।

घाव और रक्तस्राव

घाव (जख्म) खुली क्षति को कहते हैं, जिसमें त्वचा या श्लेष्मल झिल्ली साबूत नहीं रह जाती। घाव कई कारणों से होते हैं: ग्राग्नेयास्त्र के कारण, जैसे गोली, छर्रे या बम के टुकड़े की चोट से; कटने, फटने, खरोंचने, भोंकाने, या कुचलने से; कुंद चोट से (जैसे भारी हथौड़े से); किसी जंतु के काटने से। घाव के प्रकार भी कई हैं: ग्रारपार, कुंद, स्पर्शरेखीय (शरीर की सतह के साथ); बेधक, उदाहरणार्थ पेट, वक्ष, कपाल या ग्रस्थि-संधि जैसे बंद कोटरों में; ग्रबेधक।

कटने या भोंकाने पर घाव की किनारियां चिकनी तथा नियमित होती हैं, उन पर कट-छँट कम दिखती है। कुचल जाने पर या ग्राग्नेयास्त्र से घायल होने पर क्षेत्र अधिक विस्तृत होता है, उसमें जीवाणुग्रों के **पैठन** (ग्रवांछित प्रवेश) ग्रौर उनके पनपने का खतरा बढ़ जाता है; इस तरह का घाव जल्द नहीं भरता, ग्रक्सर वह पकने लगता है। ग्रपवादजनक स्थितियां हैं: जब बुलेट नर्म ऊतक के ग्रारपार हो जाता है, ग्रांतर (ग्रांत-रिक) कोटरों में पहुँच कर रुक नहीं जाता, या जब

टुकड़ों या छर्रों की चोट से सतही घाव होता है। दुर्घटनाजनित घाव हमेशा जीवाणुओं से दूषित हो जाता है, क्योंकि जीवाणु सर्वत्र हैं—त्वचा और कपड़ों पर, मिट्टी और हवा में, हर चीज में। वे चोट पहुँचाने वाली वस्तु पर भी होते हैं। घाव में जीवाणुओं के लिये जीवनानुकूल परिस्थितियां होती हैं। नष्ट तथा मृत ऊतक उनके लिये पोषक परिवेश का काम करते हैं, विशेषकर जब घाव का क्षेत्र गोली लगने से या कुचलने से काफी विस्तृत होता है।

घावों का सबसे सामान्य सहविकार है—**पूयता** (पकना, पीव आना या पूयकारी जीवाणुओं का पैंठन)। इसके लक्षण घाव होने के 5–7 दिन बाद से प्रकट होने लगते हैं; वे स्थानीय पूयता के भी हो सकते हैं और पूरे शरीर में उसके विस्तार के भी। पूयता के स्थानीय लक्षण ये हैं: घाव में दर्द बढ़ जाता है, घाव की किनारी पर त्वचा लाल हो जाती है, थोड़ा फूल जाती है और छूने पर गर्म लगती है (यह सब जीवाणुओं के विरुद्ध शरीर की प्रतिक्रिया है, जिसे **शोथ** कहते हैं)। कभी-कभी अधोत्वक वसा (चर्म के नीचे की वसा) में शोथ-प्रक्रिया के फैलने पर त्वचा पर लाल धारियां उत्पन्न हो जाती हैं, जो लसकुंभियों* की दिशा में होती हैं; यह

---

*रक्त के पनीले द्रव का एक भाग ऊतकों से होता हुआ विशेष केशनलियों में जमा होता है और अपेक्षाकृत बड़ी नलियों से होता हुआ पुनः शिरा में मिल जाता

लसकुंभीशोथ का लक्षण है। घाव वाले स्थल से लसीका जिन केंद्रीय लसग्रंथियों में पहुँचती हैं, वे बड़ी हो जाती हैं, फूल जाती हैं और छूने पर दर्द करती हैं (लसग्रंथिशोथ)। यथा: तलुवे, गोड़ या जांघ पर घावों के पूयन से उसी ओर के जंघामूल पर स्थित लसग्रंथियां फूल जाती हैं, हाथ पर घाव के शोथ से कांख की लसग्रंथियां फूल जाती हैं।

घाव के प्रत्यक्ष पूयन से घायल की सामान्य अवस्था बदतर होने लगती है: शरीर का तापक्रम बढ़ जाता है, नाड़ी तेज़ हो जाती है, कभी-कभी कँपकँपी भी होने लगती है। विस्तृत क्षेत्र में पूयन से ये लक्षण और भी तीव्र हो उठते हैं। लंबे समय तक पूयमूल के बने रहने पर सारा रक्त विषाक्त हो जा सकता है – इसे घावजनित रक्तसूपन (रक्त का सड़ाव) कहते हैं।

पूयन विविध जीवाणुओं के कारण होता है, जिनमें मुख्य हैं: स्ताफीलोकोक, स्त्रेप्तोकोक, प्रोतेई (लातीनी स्ताफीलोकोकस, स्त्रेप्तोकोकस, प्रोतेउस के विभक्तिहीन रूप), आंत्र-बासिल, नीलपूयक बासिल (लातीनी: बासिलस – सूक्ष्मदर्शी में सूक्ष्म बाँस के टुकड़ों जैसे दिखने

है। यह द्रव लसीका (सामासिक शब्दों में 'लस') कहलाता है। सभी लसवाही नलियों को लसकुंभियां कहते हैं; ये कहीं-कहीं मोटी हो जाती हैं; इन स्थलों को लसग्रंथियां कहते हैं, जिनमें श्वेत रक्तकण बनते हैं और लसीका रोगाणुओं से मुक्त की जाती है। – अनु.

वाले जीवाणु)। घाव में इनके अतिरिक्त ऐसे भी जीवाणु हो सकते हैं, जो (उदाहरणातया) गैसकारी विगलन उत्पन्न करते हैं। पूयक जीवाणु अपने शरीर से विषैले द्रव्य – गरल – विसर्जित करते हैं, जिससे ऊतक में द्रव या गैस इकट्ठा होने लगती है और स्थल सूज जाता है (ऊतकों में किसी भी कारण से द्रव या गैस जमा होने और उस स्थल के फूलने की क्रिया को शोफ कहते हैं)। यह सहविकार प्राणघाती होता है। घाव का सबसे खतरनाक पैंठनजनित सहविकार धनुर्वात है। यह रोग धनुर्वातकारी बासिलों से होता है, जो प्रकृति में बहुत फैले हुए हैं। इनके स्पोर (निर्लिंग प्रजनन हेतु भ्रूण-कोशिकाएं) बहुत जीवंत होते हैं, वे मिट्टी में तथा वस्तुओं की सतहों पर बिखरे रहते हैं। घाव में अनुकूल परिस्थितियां पाकर वे विकसित होने लगते हैं और शक्तिशाली गरल विसर्जित करते हैं, जो नर्वपेशी-तंत्र को प्रभावित करता है; यह शरीर की सभी पेशियों में तीव्र संकोचन और ऐंठन उत्पन्न करता है और लाल रक्तकणों को नष्ट करने लगता है (लाल रक्तकण ऊतकों और कोशिकाओं तक आक्सीजन पहुँचाते हैं)।

इस भयानक रोग को रोकने के लिये एक कारगर उपाय है – सभी घायलों को प्रतिधनुर्वात सीरम और धनुर्वात-प्रतिगरल की सूइयां देना।

घाव में बाहरी जीवाणु घायल होते वक्त तो आते ही हैं, घायल होने के बाद भी आ सकते हैं, यदि घाव

को विशेष निस्सृपक (निष्कीटित, पैठनरोधी) पट्टी से न ढका जाये।

घाव से **रक्तस्राव** भी होता है, जो कम या तेज हो सकता है। रक्तस्राव धमनीय, शिरीय, केशिकीय अथवा मृदूतकीय हो सकता है।

रक्त का स्राव शरीर से बाहर भी हो सकता है (बाह्य रक्तस्राव) और आंतर कोटरों में भी, जैसे कपाल, वक्ष, पेट के भीतर; इसे आंतरकोटरी (या सिर्फ आंतर) रक्तस्राव कहते हैं।

बड़ी धमनियों के जख्मी होने पर बहुत तीव्र रक्तस्राव होता है। ये धमनियां ग्रीवा, हँसली (जत्रुक) के नीचे, कांख, जंघा (ऊरु), घुटने के नीचे जैसे स्थानों से गुजरती हैं, और इन्हें पुकारा भी जाता है इन्हीं स्थानों के नामों से: ग्रीवा-धमनी, अधोजत्रुक धमनी, आदि)। धमनियों से रक्त अत्यधिक दाब के साथ निकलता है और यदि ठीक समय पर उसे रोका नहीं गया, तो आदमी चंद मिनटों में प्राण खो सकता है।

धमनीय रक्तस्राव तनावयुक्त स्पंदमान और कभी-कभी फव्वारे जैसी धार के रूप में होता है (चित्र 6)। रक्त का रंग चमकदार लाल होता है।

शिरीय रक्तस्राव शिरा के जख्मी होने पर नजर आता है। शिरा में रक्तदाब धमनी की अपेक्षा बहुत कम होता है, इसीलिये जख्मी शिरा से रक्त स्थिर और मंद धारा के रूप में स्रावित होता है। रक्त का रंग गाढ़ा जामुनीपन लिये होता है (चित्र 7)।
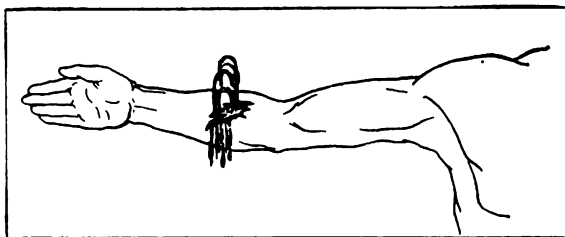
चित्र 6. धमनीय रक्तस्राव।
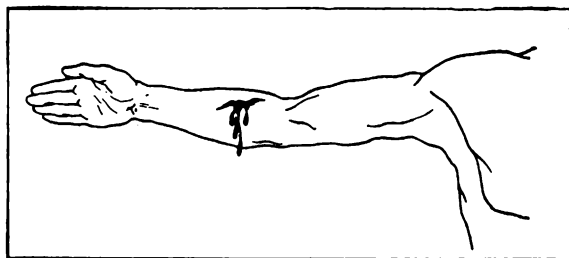
चित्र 7. शिरीय रक्तस्राव।

शिरा को उसके जख्म से ऊपर दाबने (बांधने) पर रक्तस्राव बंद नहीं होता, उल्टा तेज हो जाता है, अतः क्षत स्थल की ओर रक्तागमन को रोकने के लिये मुख्य धमनी को भी दबाना पड़ता है।

शिराओं में रक्त हृदय के पेशी-संकोचन और उसकी 'चोषक' क्रिया के कारण बहता है, अतः किसी बड़ी

शिरा (जैसे गरदन पर स्थित शिरा) में छेद होने पर रक्त के साथ-साथ बाह्य हवा भी चूषित हो जा सकती है। रक्तधारा में आया हुआ हवा का बुलबुला हृदय और मस्तिष्क की कुंभियों में अटक कर बाधक (रोड़े या लोष्ट) का काम कर सकता है, जिससे वायु-लोष्टन नामक एक घातक जटिलता उत्पन्न होती है।

केशिकीय रक्तस्राव अक्सर चर्म या श्लेष्मल झिल्ली की केश जैसी पतली रक्तवाही कुंभियों (केशिकाओं) की क्षति से होता है। इसमें रक्त कुछ समय तक घाव
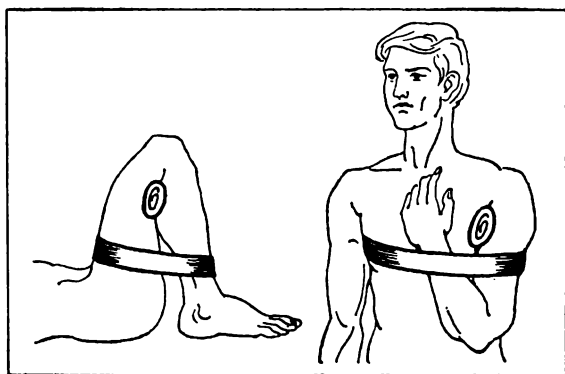
चित्र 8. जोड़ों पर हाथ-पैर को अधिकतम मोड़ दे कर रक्तस्राव रोकना। बड़ी धमनियों को अधिक कारगर ढंग से दबाने के लिये घुटने के नीचे और कांख में रूई-गजी की गद्दी रखी जाती है।

से रिसता रहता है, फिर फट कर स्कंदित (थक्का) हो जाता है और रक्तस्राव स्वयं रुक जाता है।

मृदूतकीय (मुलायम ऊतकों से बने) आंतर अंगों—यकृत, प्लीहा, वृक्क, फुप्फुस—की क्षति से भी तीव्र रक्तस्राव होता है, क्योंकि इन अंगों में रक्तवाही कुंभियों की भरमार होती है। ऐसे रक्तस्राव को **मृदूतकीय** कहते हैं।

नन्ही रक्तवाही कुंभियों के क्षत होने पर रक्तस्राव शरीर के रक्षी-प्रकार्य—रक्त के फटने—के कारण अक्सर स्वयं रुक जाता है। फटे रक्त के थक्के (स्कंद) कुंभी के घाव को अवरुद्ध कर देते हैं और रक्तस्राव रुक जाता है। बड़ी कुंभियों के क्षत होने पर थक्के रक्तदाब के कारण अपने स्थान पर रुके नहीं रहते, बह जाते हैं, इसीलिये वे रक्तस्राव को रोकने में असमर्थ रहते हैं।

बाह्य रक्तस्राव को अस्थायी तौर पर रोकने की कई विधियां हैं:

धमनीय या शिरीय मंद रक्तस्राव को रोकने के लिये घाव पर कस कर पट्टी बांधी जा सकती है, घायल भाग को ऊँची स्थिति में रखा जा सकता है।

अंग को जोड़ पर मोड़कर कुंभी को संपीडित करने (दबाने) से भी रक्तस्राव रुक सकता है। यथा, पिंडली के क्षत होने पर पैर को घुटने पर अधिकतम मोड़ दे कर बांधते हैं, और बांह से रक्तस्राव होने पर हाथ को कोहनी पर मोड़ते हैं। कंधे को कस कर पीछे लाने पर अधोजत्रुक (हँसली के नीचे की) धमनी हँसली और

प्रथम पसली के बीच दब जाती है और रक्तस्राव मंद पड़ जाता है, अतः इस विधि से हाथ के किसी भी भाग और साथ ही अधोजत्रुक और कांख के भागों से रक्तस्राव मंद किया जा सकता है (चित्र 8)।

हाथ-पैर का तीव्र धमनीय रक्तस्राव घातक होता है, अतः रक्तरोधक पाश कसने जैसा शीघ्र उपचार आवश्यक होता है। लेकिन पाश तैयार होने तक रक्तस्रावी कुंभी को घाव के कुछ ऊपर उंगलियों से दबाना पड़ता है (अंगुली-संपीडन)।

ग्रीवा तथा सर में रक्तापूर्त्ति करने वाली **ग्रीवा-धमनी** को पीछे से गरदन के बीच स्थित चौथे ग्रैव कशेरुक के अनुप्रस्थ प्रवर्ध और आगे से वक्ष-हँसली की चुचुकवत पेशी के बीच दबाते हैं।

अधोजत्रुक धमनी (हँसली के नीचे की धमनी), के क्षत होने पर उसे हँसली के भीतर से $\frac{1}{3}$ हँसली की दूरी पर प्रथम पसली के साथ दबाते हैं। **कांक्षिक धमनी** (कांख की धमनी) को कांख के गड्ढे की ओर से कंधे की हड्डी के बाहरी सिरे के साथ दबाते हैं। **स्कंध-धमनी** को द्विशिरस्क पेशी की भीतरी किनारियों के पास से कंधे की हड्डी के साथ दबाते हैं। **ऊरुक धमनी** (जंघा की धमनी) को जंघामूल में जघन (जघनास्थि) की क्षैतिज शाखा के साथ दबाते हैं (चित्र 9, 10)।

मुख्य धमनी का अंगुली-संपीडन एक बाध्यता है; इसका अत्यल्पकालीन उपयोग ही संभव है, क्योंकि कुंभी
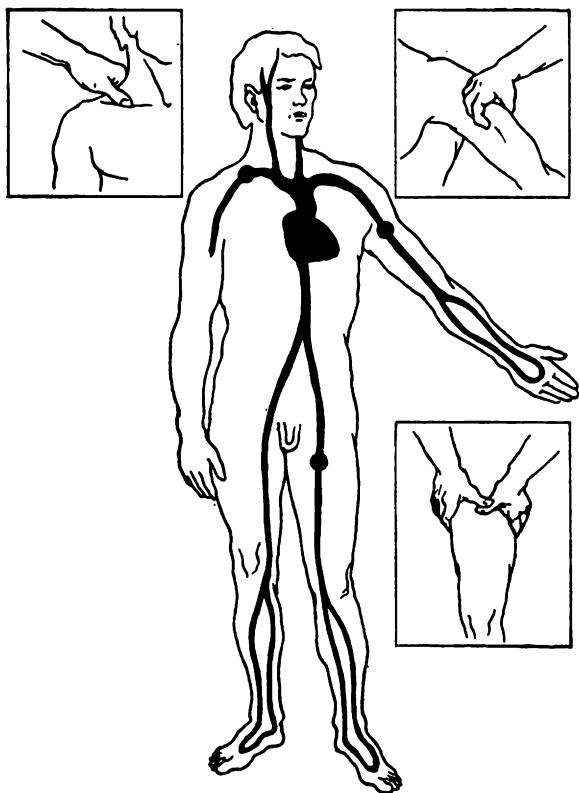
चित्र 9. बड़ी धमनियों को दबाने के मुख्य बिंदु।

को देर तक दबाये रखना कठिन काम है। इसके अति-
रिक्त, कुंभी के पास से गुजरते नर्व भी दबने लगते
हैं, जिससे पीड़ा होती है। कुंभी को उंगली से तभी तक
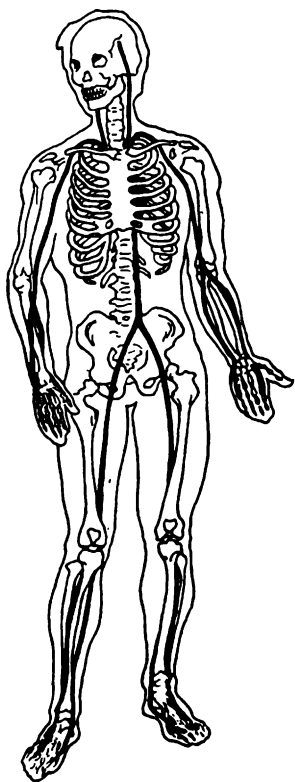
चित्र 10. अस्थि-पंजर के सापेक्ष बड़ी रक्तवाही कुंभियों की स्थिति।
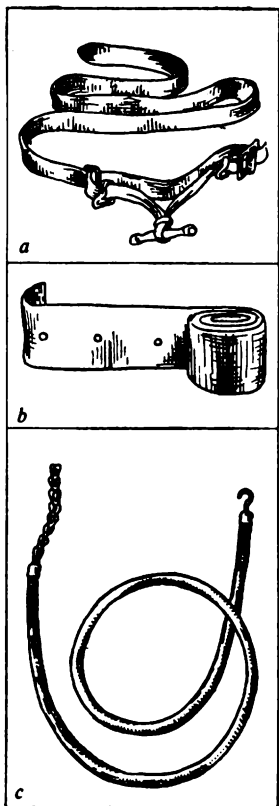
चित्र 11. रक्तस्राव रोकने के लिये विभिन्न पाश। *a)* कपड़े का पाश, *b)* फीते जैसा पाश, *c)* एसमार्ख का पाश।
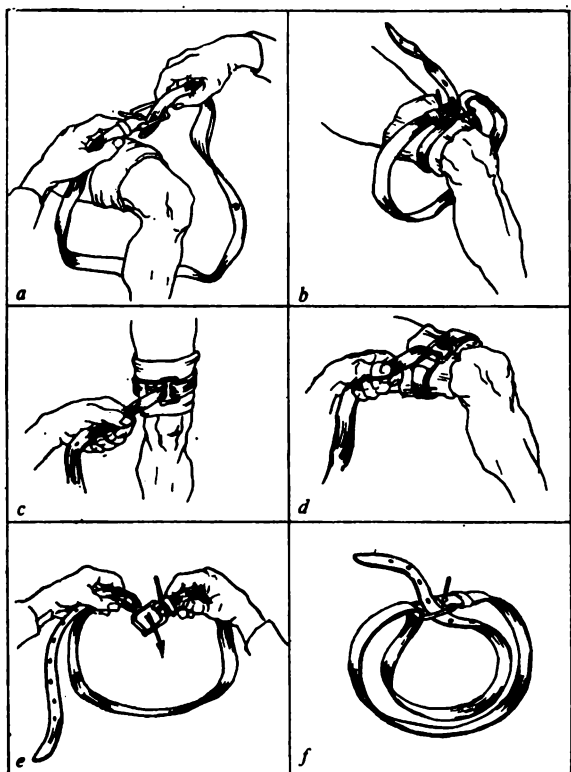
चित्र 12. पाश के रूप में बेल्ट का उपयोग। *a, b, c, d* – पाश बांधने के चरण ; *e, f* – दुहरे पाश की तैयारी।

दबाये रखते हैं, जबतक रक्तरोधक पाश नहीं कसा जाता।

पाश (रक्तरोधक पाश) कई तरह के होते हैं।
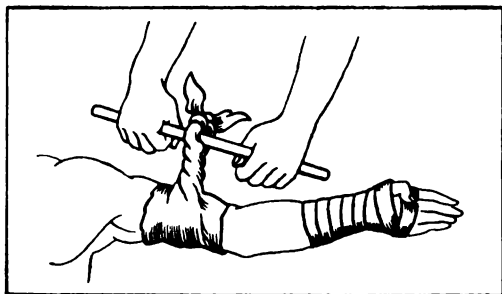
चित्र 13. रूमाल के ऐंठन द्वारा रक्तस्राव रोकना।
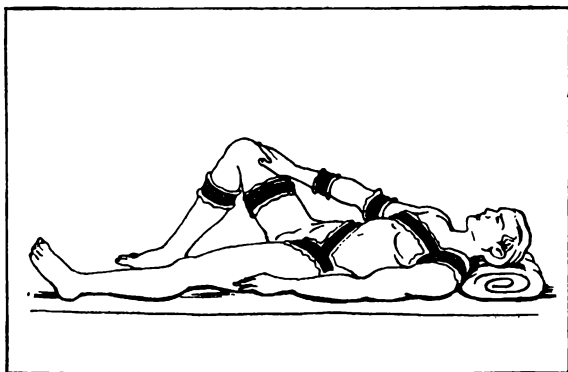
चित्र 14. रक्तस्राव रोकने के लिये पाश बांधने के स्थल।

रबड़-पाशों का अधिक प्रचलन है। एसमार्ख का पाश रबड़ की मजबूत नली होती है, जिसके एक सिरे पर धातु की सिकड़ी होती है और दूसरे सिरे पर धातु का हूक।

इसकी लंबाई 1.5 मीटर होती है। फीतों जैसे रबड़-पाश अधिक लोचदार होते हैं (चित्र 11)।

कपड़े के पाश में प्रत्यास्थता (लचक) नहीं होती, इसीलिये इससे कुंभी दाबने के लिये इसे ऐंठन देना पड़ता है। कामचलाऊ पाश बनाने के लिये रबड़ की कोई भी नली, फीता, या बेल्ट, टाई आदि काम आ सकते हैं (चित्र 12, 13)।

रक्तरोधक पाश घाव से ऊपर, लेकिन यथासंभव उसके समीप, कसा जाता है।

कंधे के बीच पाश कसने से कतराना चाहिये; इससे रश्मिक नर्व के दबने का खतरा रहता है, जिससे लकवा विकसित हो जा सकता है (चित्र 14)। पाश कपड़े या किसी मुलायम पट्टी (तह कर के लपेटे हुए तौलिये या रूमाल) पर ही कसते हैं। इससे दर्द कम होता है और त्वचा को हानि नहीं पहुँचती।

रबड़-पाश दोनों हाथों से खींचते हुए हाथ (या पैर) पर कई बार लपेटते हैं फिर उसे जड़ देते हैं। रबड़ को इतना ही तानना चाहिये कि रक्तस्राव रुक जाये; इससे हाथ (या पैर) पीला पड़ जाता है। बहुत कसे हुए पाश से नर्व क्षत हो सकते हैं और हाथ (या पैर) में लकवा हो जा सकता है। अपेक्षाकृत ढीले पाश से हाथ (या पैर) पीला नहीं, नीला पड़ जाता है और रक्तस्राव तेज हो जाता है, क्योंकि कृत्रिम शिरीय अवरोध उत्पन्न हो जाता है।

कपड़े की पट्टी से पाश कसने के लिये उसे हाथ

या पैर पर दो बार लपेटते हैं और कस कर खींचते हैं; उसके सिरों को गांठ से जोड़ कर उसमें कोई डंडी घुसा कर तबतक ऐंठते हैं, जबतक रक्तस्राव रुक न जाये (चित्र 13)।

पाश लगातार एक घंटे से ज्यादा नहीं रखना चाहिये। एक घंटे बाद उसे ढीला करना चाहिये, ताकि रक्तसंचार पुनर्स्थापित हो जाये। यदि रक्तस्राव रुका नहीं है, तो पाश को थोड़ा ऊपर खिसका कर फिर से कसना पड़ता है। कुल मिला कर दो घंटे से अधिक समय तक पाश नहीं रखना चाहिये, अन्यथा हाथ (या पैर) मृत हो जा सकता है। इसीलिये पाश कसते ही एक कागज पर समय लिख लेना चाहिये और घायल के ही वस्त्र पर पिन से ऐसी जगह लगा देना चाहिये कि वह दिखता रहे।

पाश कस लेने के बाद आहत को तुरंत किसी चिकित्सा-संस्थान में पहुँचाना चाहिये, जहां कुंभी के क्षत सिरे को बांध कर या टाँके लगा कर रक्तस्राव रोका जा सके। यदि ठंड का मौसम हो तो पाशबद्ध अंग को अच्छी तरह लपेट कर रखना चाहिये, ताकि उसे ठंड न लगे। आवश्यकता पड़ने पर उसे सेंकना भी चाहिये।

तीव्र रक्ताल्पता

अधिक रक्तस्राव से तीव्र **रक्ताल्पता** उत्पन्न होती है। वयस्क शरीर में पाँच लीटर तक रक्त होता है;

रक्त में डेढ़ लीटर से अधिक की कमी जीवन के लिये गंभीर खतरा उत्पन्न करती है। रक्तहानि का दर भी महत्त्व रखता है, इसीलिये मुख्य धमनियों की क्षति से रक्तस्राव विशेष खतरनाक होता है।

स्त्रियां रक्तहानि अपेक्षाकृत सहज रूप से सहन करती हैं। एक वर्ष तक के बच्चे के लिये 250—300 cm^3 रक्तहानि भी प्राणघातक होती है।

अत्यधिक रक्तहानि से **तीव्र रक्ताल्पता** के लक्षण उत्पन्न होते हैं:

आहत सामान्य कमजोरी महसूस करता है, उसे प्यास लगती है, सर में चक्कर आता है, आँखों के आगे अंधेरा छाता है। त्वचा और होठों तथा पलकों की श्लेष्मल झिल्लियां पीली पड़ जाती हैं, आँखें धँस जाती हैं। आहत बार-बार जंभाई लेता है, ललाट पर ठंडा पसीना आता है। चेहरे के उभार तीक्ष्ण हो उठते हैं। नाड़ी की गति प्रति मिनट 120 स्पंद या इससे भी तेज हो जाती है; स्पंद बहुत क्षीण होते हैं, उन्हें गिनना मुश्किल होता है। रक्तदाब घटता है। आगे चल कर मूर्छा आती है, आँख की पुतलियां विस्फारित होने लगती हैं। निष्चेत मलमूत्र-विसर्जन भी संभव है। यदि ऐसे आहत को शीघ्र आयुरी सहायता नहीं पहुँचायी गयी, तो मस्तिष्क में आक्सीजन की भूख के कारण श्वसन और रक्तसंचार के केंद्र लकवाग्रस्त हो जायेंगे, आहत की जान चली जायेगी।

पहले तो उपरोक्त विधियों में से किसी के उपयोग से रक्तस्राव रोकना चाहिये। इसके बाद रोगी को बड़ी

मात्रा में पेय देना चाहिये।

रक्तापूर्त्ति कम होने के कारण सबसे पहले श्वसन और रक्तसंचार के नर्व-केंद्रों को क्षति होती है; ये प्राण-भूत केंद्र मस्तिष्क में स्थित होते हैं, अतः पहले सर और हृदय की ओर रक्त-प्रवाह तेज करनी चाहिये। इसके लिये आहत को पीठ के बल इस तरह लिटाते हैं कि सर पैरों से कुछ नीचे रहे: सर के नीचे से तकिया हटा देते हैं या चौकी की गोड़थारी को ऊँचा कर देते हैं। इससे सर की ओर रक्तसंचार और मस्तिष्क की रक्तापूर्त्ति सहज हो जाती है और आहत को चिकित्सा-संस्थान तक ले जाने के लिये कुछ समय बच जाता है। वहां रक्तस्राव पूर्णतया रोक देते हैं और रक्ताधान करते हैं (रक्त देते हैं)।

चोटजनित अभिघात

अस्थि-भंग की विपुलता, विशेषकर आग्नेयास्त्र के कारण; हाथ या पैर का कटना, आंतर अंगों का फटना आदि जैसी गंभीर यांत्रिक चोट से एक आपादमस्तक, सांगोपांग शारीरिक प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है, जो शरीर के प्राणभूत प्रकार्यों को इतना दमित कर देती है कि वे स्तब्ध हो जाते हैं। ऐसी अवस्था को **अभिघात** कहते हैं।

अभिघात कैसे उत्पन्न होता है यह अभी तक पूरी तरह स्पष्ट नहीं हुआ है, लेकिन इतना ज्ञात है कि उसकी उत्पत्ति में विपुल रक्तहानि और केंद्रीय नर्वतंत्र

में कमी और परिसरीय रक्तवाही कुंभियों के संकोचन से ऊतकों का पोषण रुक जाता है, आक्सीजन की भूख बढ़ने लगती है। आहत की स्थिति और भी चिंताजनक होने लगती है, क्योंकि क्षत स्थल पर प्रोटीन-विघटन के विषैले उत्पाद शरीर में अपचोषित होने लगते हैं और द्रव्य-विनिमय में गड़बड़ी होने लगती है।

अभिघात को निम्न बातों से और भी बढ़ावा मिलता है: विपुल रक्तहानि, अत्यधिक ठंड, अतिश्रांति, फाका (भूख); आहत को लापरवाही से उठाने, गाड़ी में झटके लगने, सही वेदनाहरण न करने, हरमुठता से खपची बांधने आदि से प्राप्त द्वितीयक चोट।

चोटजनित अभिघात के तल्पिक चित्र (रोग की कुल अभिव्यक्ति) का क्लासिकल वर्णन विख्यात रूसी करोर्जक (शल्य-चिकित्सक) नि. पिरोगोव ने निम्न शब्दों में प्रस्तुत किया है (वे इसे 'सुन्नता' कहते थे): "कटे हुए हाथ वाला ऐसा एक सुन्न आदमी ड्रेसिंग टेबुल पर निश्चेष्ट लेटा है; वह न कराहता है, न रोता है, न चिल्लाता है। कोई तकलीफ भी नहीं बताता, हर बात के प्रति उदासीन रहता है, न ही कोई मांग करता है। शरीर ठंडा है, चेहरा मुरदे जैसा पीला है; दृष्टि स्थिर है और कहीं दूर टिकी हुई है। नाड़ी धागे-सी पतली है, मुश्किल से पकड़ में आती है; वह रुक-रुक कर गति करती है। सुन्न (आदमी) सवाल का जवाब नहीं देता, देता भी है, तो बुदबुदाते हुए कि सुनाई ही नहीं पड़ता। साँस भी बहुत धीमी है। घाव और त्वचा में

कोई संवेदनशीलता नहीं रह गयी है, लेकिन जब घाव से लटकते हुए बड़े नर्व में कोई क्षोभ होता है, तो सिर्फ चेहरे की पेशियों के संकोचन से उसकी संवेदना का पता चलता है। यह अवस्था कभी-कभी कुछ घंटों बाद समाप्त हो जाती है और कभी-कभी मृत्युपर्यंत अपरिवर्तित रहती है।"

अभिघात की तीन कोटियां हैं :

प्रथम कोटि का अभिघात क्षतिपूर्ति की अवस्था है : सामान्य अच्छी हालत के साथ-साथ पीलापन और कमजोरी प्रेक्षित होती है। नाड़ी की गति प्रति मिनट 90—100 स्पंद होती है; धमनीय दाब 100 mmHg (सौ मिलिमीटर ऊँचे पारद-स्तंभ के दाब) से अधिक होता है।

दूसरी कोटि का अभिघात आंशिक क्षतिपूर्ति की अवस्था है : सामान्य अवस्था बुरी होती है, कमजोरी, पीलापन, घबराहट, ठंडा पसीना, कभी-कभी वमन जैसे लक्षण प्रेक्षित होते हैं। नाड़ी की गति 120—140 स्पंद प्रति मिनट होती है, वे इतने क्षीण होते हैं कि उन्हें गिनना कठिन होता है। धमनीय दाब 70—80 mmHg (पढ़ें : मिलिमीटर पारद-स्तंभ) की सीमा में होता है।

तीसरी कोटि के अभिघात में शरीर कोई क्षतिपूर्ति नहीं करता : अवस्था बहुत गंभीर होती है, कमजोरी भी बहुत होती है, शरीर पीला होता है, त्वचा ठंडे पसीने से तर रहती है, प्यास लगती है, वमन होता है। नाड़ी 120—160 स्पंद प्रति मिनट की गति से

चलती है, गिनना बहुत कठिन होता है, रक्तदाब 70 mm Hg तक उतर आता है।

प्राथमिक उपचार. यदि रक्तस्राव है, तो उसे यथा-शीघ्र रोकना चाहिये। वक्ष या कंठ के क्षेत्र में खुले छेद वाला घाव (जख्म) होने पर–हर्मेटिक (वायुरुध) पट्टी लगानी चाहिये; अस्थि-भंग की स्थिति में–अंग को पट्टियों की सहायता से निश्चल बनाना तथा वेदनाहर दवाएं देनी चाहिये। आहत के शरीर को गर्म रखना चाहिये और यदि उदरस्थ आंतर अंगों को क्षति नहीं पहुँची है, तो उसे गर्म चाय, कौफी, शराब या वोद्का पीने के लिये देनी चाहिये।

दीर्घकालीन संपीडन का सिंद्रोम

मकान ढहने से भारी मलबे (ईंट, शहतीर आदि) के नीचे हाथ या पैर के लंबे समय तक दबे रहने (संपीडन) से एक विशिष्ट तल्पिक चित्र मिलता है, जो चोटजनित अभिघात के साथ बहुत समानता रखता है। यह उस स्थिति में भी प्रेक्षित होता है, जब आहत को कोई गंभीर जख्म नहीं होता, उसकी हड्डियां भी टूटी नहीं होतीं। दीर्घकालीन संपीडन के सिंद्रोम (लक्षण-समूह) में निम्न लक्षण आते हैं:

चोटजनित अभिघात के विशिष्ट लक्षण–पीलापन, ठंडा पसीना, सामान्य कमजोरी, क्लांति (सुस्ती),

आंतर शरीरक्रियाओं का दमन, रक्तदाब में कमी, नाड़ी का निःशक्त और तीव्र होना – तुरंत नहीं उत्पन्न होते; वे संपीडन से पैर की मुक्ति के कुछ घंटों बाद उत्पन्न होने लगते हैं। 2—4 दिन बाद आहत के गुर्दे की क्रिया अपर्याप्त हो जाती है (गुर्दे की अपूर्णता): मूत्र-विसर्जन कम हो जाता है, सामान्य अवस्था तेजी से बदतर होने लगती है, पीलिया प्रकट होता है, वमन और प्रलाप शुरू हो जाता है। यह सब गुर्दे और यकृत के कार्य में गड़बड़ी के कारण शरीर में विषैले द्रव्यों के बनने से होता है। हाथ-पांव बहुत शोफित और कठोर हो जाते हैं; उन पर सफेद धब्बों के साथ नीलापन छा जाता है। उन पर धमनी का स्पंद निर्धारित नहीं हो पाता। रक्तसंचार में गड़बड़ी के कारण पैरों की पेशियां मृत होने लगती हैं।

प्राथमिक उपचार. आहत को संपीडन से मुक्त कर के हाथ (या पैर) को अचल कर देना चाहिये। यदि संभव है, तो पैर को बर्फ के चूरन से ढक देना चाहिये, वेदनाहर दवाएं देनी चाहिये और आहत को सावधानी-पूर्वक शीघ्रातिशीघ्र अस्पताल पहुँचाना चाहिये।

मूर्छा

मस्तिष्क में तेजी से रक्ताल्पता विकसित होने की वजह से आकस्मिक अस्थायी चेतना-लोप (मूर्छा) विभिन्न चोटजनित स्थितियों में एक सहविकार की तरह अक्सर

हो जाया करता है। मूर्छा उत्पन्न होने के निम्न कारण हो सकते हैं: शक्तिशाली रागात्मक तनाव या शारीरिक वेदना, जैसे हड़मुठता से पट्टी आदि बांधने, परिवहन में हिचकोले या झटका लगने से।

मूर्छा के क्षण रोगी तेजी से पीला पड़ जाता है, चेतना खो देता है, बाह्य क्षोभकों – चिल्लाहट, सूई आदि – पर कोई प्रतिक्रिया नहीं करता। नाड़ी तेज और निर्बल हो जाती है, आँखों की पुतलियां विस्फारित हो जाती हैं; गहरी मूर्छा में वे प्रकाश पर प्रतिक्रिया नहीं करतीं। बेहोशी की अवस्था अक्सर कुछ सेकेंडों से लेकर कुछ मिनटों तक बनी रह सकती है।

प्राथमिक उपचार. रोगी को पीठ के बल इस तरह लिटाना चाहिये कि सर पैरों से कुछ नीचे रहे, कालर, बेल्ट, चेस्टर आदि ढीले कर देने चाहिये, ताजी हवा आने देनी चाहिये, अमोनिया स्पीरिट सुंघाना चाहिये। चेहरे पर ठंडे पानी के छींटे मारने चाहिये, गालों पर हलकी चपतें लगानी चाहिये। कुछ स्थितियों में कृत्रिम श्वसन कराया जाता है, हृदोद्दीपक दवाएं दी जाती हैं।

पट्टी बांधने के नियम

प्राथमिक उपचार का एक महत्त्वपूर्ण अंग है – नि-स्सृपक पट्टी बांधना। निस्सृपक पट्टी घाव को बाह्य घटकों की अभिक्रिया से बचाती है तथा उसमें जीवाणुओं को
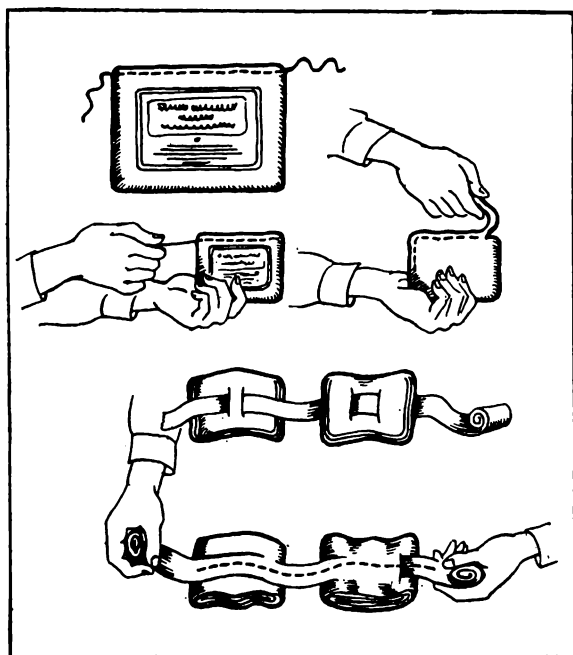
चित्र 15. पट्टी का पैकेट।

ग्राने से रोकती है, क्योंकि वे गंभीर विकार उत्पन्न कर सकते हैं। (निस्सृपक पट्टी घाव में जीवाणुओं का पैठन रोकती है, अतः उसे स्वयं भी निष्कीटित होना चाहिये। पैठन रोकने की क्रिया को निस्सृपन कहते हैं; पैठन और उससे उत्पन्न सृपन या सड़ाव से संघर्ष की क्रिया को प्रतिसृपन कहते हैं।)

घाव को पानी से कभी नहीं धोना चाहिये।

पट्टी बांधने के पहले घाव के गिर्द त्वचा को स्पीरिट या टिंचर आयडीन के लेप से निष्पंठित कर लेते हैं, इसके बाद घाव पर निष्कीटित पट्टी बांधते हैं। यदि प्राथमिक उपचार के लिये बनी-बनायी पट्टी का पैंकेट हो, तो उसका उपयोग अभीष्ट है।

पट्टी का पैंकेट. सोवियत संघ में प्राथमिक उपचार के लिये विशेष पट्टी के पैंकेट उत्पादित किये जाते हैं। इसमें पट्टी मुलायम ज़ालीदार कपड़े (गजी) की बनी होती है। इसकी चौड़ाई 7 cm होती है; एक सिरे पर रूई व गजी की छोटी सी गद्दी (9×6 cm) जड़ी होती है; ठीक ऐसी ही दूसरी गद्दी आवश्यकतानुसार दायें या बायें खिसकायी जा सकती है।

पट्टी मोमी कागज में लिपटी होती है, उसकी तह पिन से नत्थी की रहती है। यह सब एक प्लास्टिक के (या रबड़कृत) थैले में बंद होता है, जिसकी किनारी हल्की सी कटी होती है (चित्र 15)।

कटी किनारी को फाड़ कर भीतरी पैंकेट निकालते हैं। मोमी कागज की तह खोल कर सावधानी के साथ पट्टी निकालते हैं, ताकि गद्दियों की वह सतह हाथ से स्पर्श नहीं करे, जिसे घाव पर लगाया जायेगा। यदि घाव आर-पार हो, तो अचल गद्दी को घाव के प्रवेश-द्वार पर रखते हैं और चल गद्दी को—दूसरी ओर। गद्दियों के ऊपर से पट्टी कस देते हैं।

इसके अतिरिक्त तथाकथित छोटी निष्कीटित पट्टियों
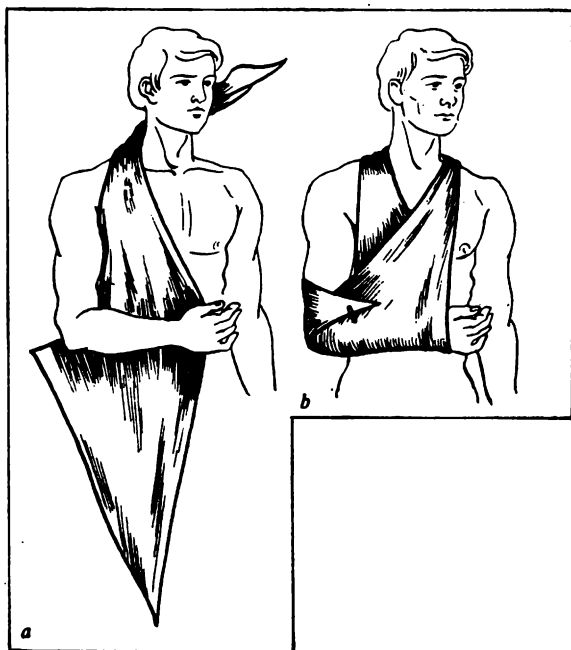
चित्र 16. तिकोण रूमाल के उपयोग (*a*, *b*)।

का भी उत्पादन होता है, जो लिपटी हुई अवस्था में पैकेट जैसी ही होती हैं। इसमें रूई व गजी की गद्दी होती है, जिसका आकार फैली हुई अवस्था में 25 × 32 cm होता है; इसका एक सिरा 13 cm चौड़ी पट्टी से जुड़ा होता है।

विस्तृत घावों को ढकने के लिये (विशेष कर जलने पर) साफ पतले सूती चादर का उपयोग करते हैं, लेकिन इसके पहले उस पर खूब गर्म इस्तिरी करते हैं, ताकि वह निष्कीटित हो जाये।

पट्टियों के प्रकार (कार्य के अनुसार): स्थिरकारी (जकड़ने वाली) – रूई-गजी की गद्दी को या स्वयं पट्टी को घाव पर रोके रखने के लिये लपेटनों वाली पट्टी; संपीडक – शिरीय रक्तस्राव रोकने वाली पट्टी; निश्चलकारी – अस्थि-भंग वाले अंग को निश्चल करने वाली पट्टी।

तिकोण पट्टियां विशिष्ट रोगों या क्षतियों में हाथ को लटकाने के काम आती हैं। यह किसी भी बड़े रूमाल को उसके कर्ण पर तह लगा कर प्राप्त की जा सकती है। हाथ को केहुनी पर 90° के कोण पर मोड़ते हैं और पट्टी का मध्य भाग हाथ के पीछे रखते हैं। पट्टी का समकोण केहुनी से कुछ आगे निकला होता है। पट्टी का ऊपरी कोना गरदन के पीछे हाथ वाली तरफ से ले जाते हैं; लटकता हुआ कोना गरदन के पीछे दूसरी तरफ से ले जाते हैं और वहीं दोनों कोनों को बांध देते हैं। केहुनी से आगे निकले हुए कोने को हाथ पर मोड़ देते हैं और आलपीन से जड़ देते हैं (चित्र 16)।

एक अन्य स्थिति में पट्टी को क्षत हाथ की तरफ से कूल्हे पर रखते हैं और न्यूनकोण वाले कोणों को धड़ के दूसरी तरफ ला कर आपस में इस तरह बांध देते हैं कि एक कोना दूसरे से लंबा हो। नीचे लटकते कोने को
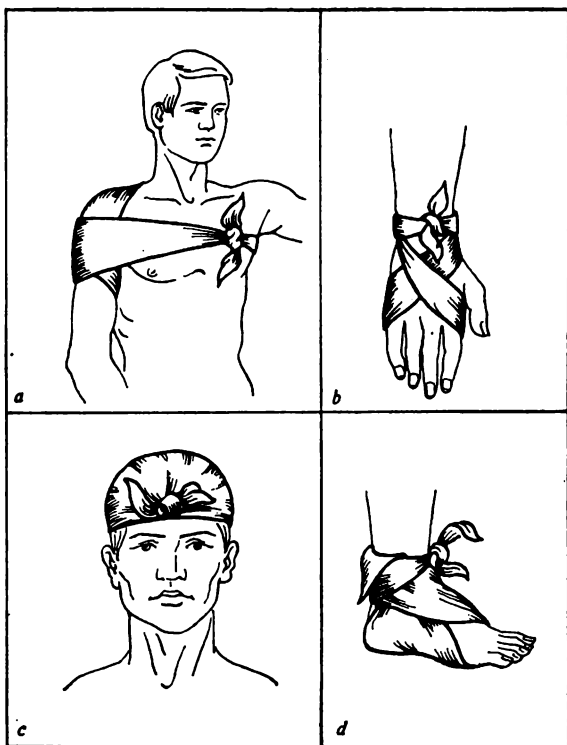
चित्र 17. तिकोण रूमाल से पट्टी बांधने की विभिन्न विधियां। a) कंधे पर, b) टखने पर, c) कलाई पर, d) सर पर।

उठा कर केहुनी पर मुड़े हाथ ग्रौर बाँह को समेटते हुए कंधे के पीछे ले जाते हैं ग्रौर बाकी कोने के साथ बांध
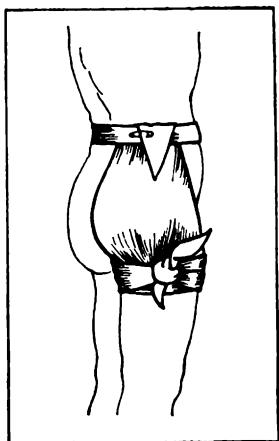
चित्र 18. तिकोण रूमाल से नितंब पर पट्टी।

देते हैं। यदि कोना छोटा पड़ता है, तो उसके साथ कोई डोरा या फीता बांध कर उसे लंबा कर लेते हैं।

तिकोण पट्टी शरीर के किसी भी अंग पर बांधी जा सकती है (चित्र 17, 18)।

चौपुच्छी पट्टी के सिरों पर लंबी अनुतीर कटानें होती हैं (चित्र 19)। इससे नाक, ठुड्डी, ललाट या पश्चकपाल पर बांधने में सुविधा होती है।

T- पट्टी (T- आकार की पट्टी) एक लंबी पट्टी पर बीच से दूसरी लंबी पट्टी लटकाने से बनती है। ऐसी

चित्र 19. चौपुच्छी पट्टी।

पट्टी मूलाधार (परों, गुदा और जननेंद्रिय के बीच स्थित बिंदु) के क्षेत्र के लिये सुविधाजनक होती है (चित्र 20) ।

ज्यादातर गजी की ही पट्टियों का इस्तेमाल होता है ।

पट्टी लपेटने के नियम . पट्टी लपेटते वक्त कुछ नियमों का पालन करना चाहिये । यथा, जिस अंग पर पट्टी लपेटना है, उसे पहले से ही सुविधाजनक तथा स्वाभाविक शरीर-

चित्र 20. मूलाधार क्षेत्र पर T-आकार की पट्टी ।

लोचनी स्थिति में होना चाहिये, ताकि पट्टी बांधने के बाद उसकी स्थिति बदलनी न पड़े । इस नियम को तोड़ते हुए यदि हाथ-पैर को मोड़ कर पट्टी लपेटी जाये और पट्टी बांधने के बाद उसे सीधा किया जाये, तो पट्टी अपने स्थान से खिसक आयेगी । इसके विपरीत, यदि हाथ को मुड़ी हुई स्थिति में रखना है और पट्टी उसे सीधी स्थिति में रख कर लपेटी जाती है, तो बाद में हाथ मोड़ने पर पट्टी से दबाव, तनाव और असुविधा महसूस होती है । इस बात को ध्यान में रखते हुए ही कोहनी को मोड़ कर उस पर पट्टी बांधते हैं, बांह पर–

उसको धड़ से थोड़ा दूर करके; अंगुलियों पर पट्टी बांधने के पहले उन्हें हल्का मुड़ा रहने देते हैं और अंगूठे को स्वतंत्र रखते हैं। पैर पर पट्टी लपेटने के लिये उसे पहले से ही तना हुआ रखते हैं, गोड़ पर पट्टी बांधने के लिये उसे पैर के साथ समकोण पर रखते हैं।

हाथ या पैर पर पट्टी परिसरीय भाग से केंद्रीय भाग (धड़) की ओर लपेटना शुरू करते हैं। लपेटने का काम सिर्फ एक दिशा में (अक्सर घड़ी की सूई की दिशा में) किया जाता है। हर लपेटन पिछली लपटेन का कुछ अंश ढक लेती है; लपेटते वक्त इतना ही कस कर खींचते हैं कि पट्टी टिकाऊ रहे, अपने स्थान से खिसक न जाये। पट्टी में सलवटें नहीं पड़नी चाहिये। इन नियमों का पालन करने से अंग पर दाब समरूपता के साथ पड़ता है और रक्तसंचार में बाधा नहीं पड़ती। लपेटन खत्म होने पर पट्टी के सिरे को अनुतीर दिशा में फाड़ कर दो सिरे बना लेते हैं, फिर उन्हें लपेट कर आमने-सामने से लाते हुए आपस में बांध देते हैं। बांधना इतना जोर से नहीं चाहिये कि रक्तसंचार में बाधा पड़े, साथ ही इतना ढीला भी नहीं कि पट्टी घाव से खिसक जाये।

वृत्ताकार (सर्पिल) लपेटनें. पट्टी का सिरा बायें हाथ के अंगूठे से उस स्थल पर दबाते हैं, जहां पट्टी बांधनी है। दायें हाथ से पट्टी फैलाते हुए गोल चक्करों के रूप में एक के ऊपर एक लपेटनें देते जाते हैं, इससे प्रथम लपेटनें स्थिर हो जाती हैं (चित्र 21)।

यदि पट्टी बांधे जाने वाला अंग सर्वत्र समान मुटाई
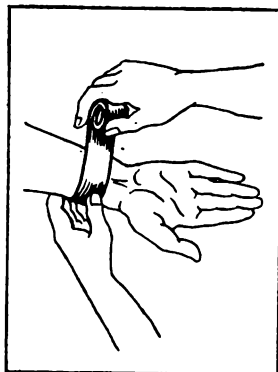
चित्र 21. वृत्ताकार या सर्पिल लपेटनें।
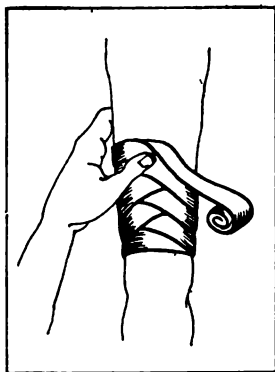
चित्र 22. ऐंठन के साथ सर्पिल लपेटनें।
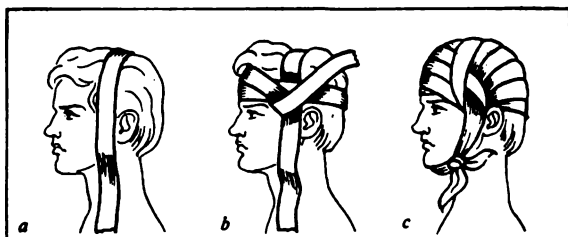
चित्र 23. टोपी के रूप में पट्टी (*a*, *b*, *c*)।

नहीं रखता, जैसे पिंडली, जांघ, बाँह, तो उस पर सीधी और उल्टी (ऐंठन के साथ) सर्पिल लपेटनें डालनी अच्छी होती है (चित्र 22)।

सर के विभिन्न भागों पर पट्टियां. किरीट (सर के

चित्र 24. दायीं आँख पर पट्टी। चित्र 25. लगामनुमा पट्टी।

उच्चतम क्षेत्र), पश्चकपाल और निचले जबड़े के घावों के लिये टोपीनुमा पट्टी: 70-80 सेंटीमीटर लंबी पट्टी का मध्य भाग किरीट पर रखते हैं। छोर कानों के पास से समान लंबाइयों में लटके रहते हैं। आहत स्वयं या उपचारकर्ता का कोई सहायक पट्टी के सिरों को दोनों हाथों से नीचे की ओर उदग्र खींचे रहता है। उपचारकर्ता दूसरी बड़ी पट्टी को पकड़ कर सर के चारों ओर ललाट पर कुछेक लपेटनें लगाता है, इसके बाद पहली उदग्र पट्टी के सिरों को नीचे की ओर खींचते हुए बड़ी पट्टी को एक सिरे के गिर्द मोड़ कर सर का ऊपरी भाग आगे से ढँकता हुआ उसे दूसरे कान की ओर ले जाता है। वहां पुनः उसे दूसरे सिरे के गिर्द मोड़ कर उसी तरह से सर का पिछला भाग ढकता हुआ वापस पहले कान की ओर लाता है। उपचारकर्ता हर लपेटन को पहले से कुछ ऊपर बांधता है। इस तरह क्रमशः पूरा सर ढक

जाता है। तब खिंचे हुए सिरों को ठुड्डी के नीचे लाकर आपस में बांध दिया जाता है (चित्र 23)।

दायीं आँख पर पट्टी. पहले सर के गिर्द वृत्ताकार लपेटनें डाल कर पट्टी को स्थिर करते हैं (लपेटनें दायें से बायें, घड़ी की सूई चलने की विपरीत दिशा में डालते हैं), इसके बाद पट्टी तिरछा, पश्चकपाल की ओर ले जाते हैं और वहां से दायें कान के नीचे से होते हुए दायीं आँख को ढक देते हैं (चित्र 24)। इसके बाद पट्टी बारी-बारी से सर के गिर्द और आँख पर से गुजारते रहते हैं।

बायीं आँख पर पट्टी डालने के लिये लपेटनों की दिशा बायें से दायीं ओर अधिक सुविधाजनक होती है; इसमें पट्टी को पीछे से आगे की ओर बायें कान के नीचे से गाल पर तिरछा गुजारते हैं और आँख ढकते हुए सर के चारों तरफ लपेटते हैं। एक बार सर के गिर्द वृत्ताकार लपेटन दी जाती है और एक बार आँख पर से।

लगामनुमा पट्टी चेहरे की पार्श्व सतहों, कान और निचले जबड़े को ढकने के काम आती है। पहले सर के गिर्द 2—3 स्थिरकारी वृत्ताकार लपेटनें डालते हैं। पीछे से पट्टी पश्चकपाल पर से होते हुए विपरीत निचले जबड़े की ओर ले जाते हैं, कुछेक बार उदग्र लपेटनें डालते हैं। इसके बाद पट्टी को पश्चकपाल से होते हुए सामने लाते हैं और कुछेक वृत्ताकार लपेटनों के बाद बांध देते हैं (चित्र 25)।

गरदन पर पट्टी की लपेटनें हल्की होनी चाहिये, बहुत कसी हुई नहीं; यह भी ध्यान रखना चाहिये कि फालतू लपेटनें न पड़ें, कम से कम में काम चल जाये, ताकि साँस में अवरोध न हो। गरदन की पिछली सतह और पश्चकपाल पर सलीबाकार पट्टी जैसी लपेटनें सुविधाजनक होती हैं। पहले पट्टी को सर के गिर्द वृत्ताकार लपेटनों से स्थिर करते हैं, फिर पश्चकपाल से तिरछा नीचे लाते हैं; गरदन की अगली सतह समेटते हुए गरदन के गिर्द एक लपेटन देते हैं, फिर तुरंत तिरछा पश्चकपाल की ओर ले जाते हैं और इसके बाद ललाट के गिर्द घुमाते हुए पुनः पश्चकपाल की ओर लौटते हैं।

हाथ पर पट्टियां. बालीनुमा पट्टी बाँह के क्षेत्र पर बाँह-कंधे के जोड़ों पर डाली जाती है। (इस तरह की पट्टी का उपयोग जांघ-कूल्हे के जोड़ के लिये भी होता है)। बाँह पर उसे लपेटने की विधि निम्न है: पट्टी स्वस्थ हिस्से की काँख से वक्ष और रोगी बाँह पर गुजारते हैं, फिर उसे बाँह के गिर्द लपेटते हुए काँख से पुनः सामने की ओर निकालते हैं। इसके बाद कंधा लपेटते हुए पीठ पर गुजारते हैं। इस तरह पूरे वक्ष-पिंजर पर पट्टी की लपेटन पड़ती है। हर लपेटन पिछली को आधा ढकते हुए उससे कुछ ऊपर होती जाती है। पट्टी तबतक लपेटते जाते हैं, जबतक कंधे की संधि और कंधे का ऊपरी भाग नहीं ढक जाता (चित्र 26)।
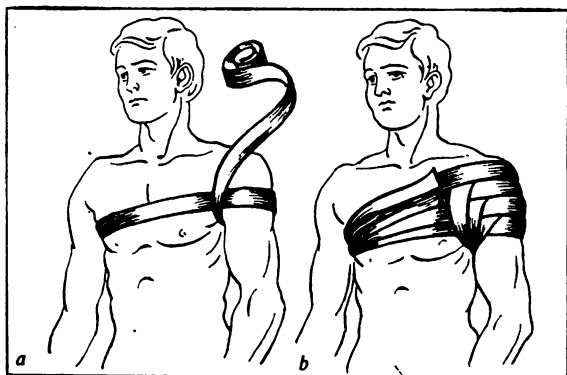
चित्र 26. कंधे ग्रौर बाँह की जोड़ पर बालीनुमा पट्टी (a, b)।

सलीबाकार पट्टी (हस्तपुच्छ के ऊपरी भाग पर). कलाई के जोड़ से थोड़ा ऊपर वृत्ताकार लपेटनों से ग्रारंभ करते हैं, फिर हथेली की पीठ पर तिरछा गुजारते हुए पट्टी को ग्रंगूठे ग्रौर तर्जनी के बीच से गुजार कर हथेली की ग्रोर लाते हैं। इसके बाद उसे उंगलियों के ग्राधार पर से गुजारते हुए पुनः हथेली के पीछे लाते हैं। फिर उससे पिछली लपेटन को काटते हुए (जिससे गुणा के चिन्ह जैसी पट्टी बंधती है) उसे पुनः कलाई पर लपेटते हैं (चित्र 27)।

उंगलियों पर पट्टी बांधना कलाई पर वृत्ताकार लपेटनों से शुरू करते हैं, इसके बाद उसे हथेली के
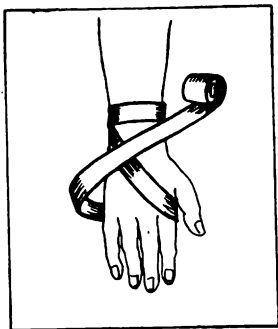
चित्र 27. हथेली के पीछे सलीबाकार पट्टी।
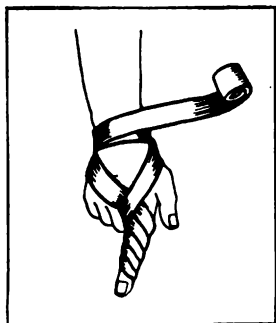
चित्र 28. उंगली पर सर्पिल पट्टी।
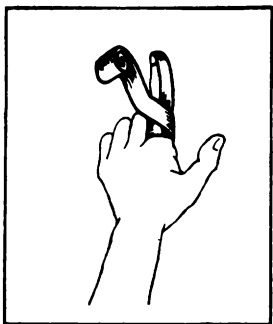
चित्र 29. उंगली के सिरे पर पट्टी।
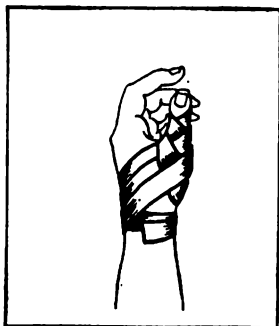
चित्र 30. अँगूठे पर बाली-नुमा पट्टी।

पीछे तिरछा गुजारते हुए उंगली के सिरे तक ले जाते हैं। फिर उससे सर्पिल लपेटनें देते हुए उसे उंगली की

जड़ तक लाते हैं और कलाई के पीछे पहली लपेटन की विपरीत दिशा में लाकर कलाई पर वृत्ताकार लपेटनें लगाते हैं (चित्र 28)। इस विधि से एक-एक कर सारी उंगलियों पर पट्टी बांधी जा सकती है।

बायें हाथ पर पट्टी बांधना कनिष्ठा से शुरू करते हैं और दायें हाथ पर अंगूठे से।

उंगली के सिरे पर पट्टी बांधने के लिये पट्टी से उंगली को जड़ के पास से पहले उसकी अगली और पिछली सतहों को ढकना शुरू करते हैं, इसके बाद पट्टी को घुमा कर पहले की तरह उंगली के पार्श्वों को ढकते हैं। फिर उंगली के आधार के पास से उंगली पर ऊपर की ओर सर्पिल लपेटनें लगाते हैं (चित्र 29)।

अंगूठे पर बाली जैसी पट्टी लगाते हैं। पहले कलाई पर वृत्ताकार लपेटनें लगाते हैं, फिर कलाई के पीछे से अंगूठे के सिरे पर चक्कर लगाते हैं; उसे एक सर्पिल लपेटन से ढकते हुए पट्टी को उंगली के पीछे पुनः कलाई पर लाते हैं। बाली जैसी पट्टी ऊपर की दिशा में बढ़ती जाती है और पूरे अंगूठे को ढक देती है (चित्र 30)।

यदि अंगूठे को छोड़ कर चारों उंगलियों समेत हाथ पर शीघ्र पट्टी बांधनी हो, तो पहले कलाई पर वृत्ताकार लपेटनें लगाते हैं। फिर हथेली के पीछे पट्टी को मोड़ कर ऊपर ले जाते हैं और उंगलियों के सिरों पर से घुमा कर हथेली पर से गुजारते हुए पुनः कलाई तक ले आते हैं। इस विधि को कुछेक बार दुहराते हुए हथेली पर सर्पिल लपेटनें डालते हैं और पट्टी को कलाई पर

चित्र 31. वक्ष पर सर्पिल पट्टी।
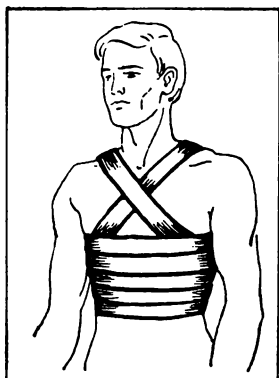
चित्र 32. वक्ष पर सलीबाकार पट्टी।

जड़ देते हैं। हथेली (और पंजे) पर सलीबाकार लपेटनों से भी पट्टी बांध सकते हैं।

वक्ष पर पट्टियां. सर्पिल पट्टी. लगभग एक मीटर लंबी पट्टी दायें या बायें कंधे के आर-पार लटका देते हैं। नीचे से ऊपर की ओर सर्पिल लपेटनें डालते हैं और पट्टी के सिरे को जड़ देते हैं। आगे से लटकते सिरे को दूसरे कंधे से पार करा कर दूसरे सिरे के साथ बांध देते हैं (चित्र 31)।

सलीबाकार पट्टी नीचे वृत्ताकार लपेटनों से शुरू करते हैं। इसके बाद पट्टी को दायीं ओर से ऊपर बायें कंधे के पार ले जाते हैं। इसके बाद पीठ की ओर से उसे दायें कंधे से होते हुए तिरछा बायीं कांख में ले
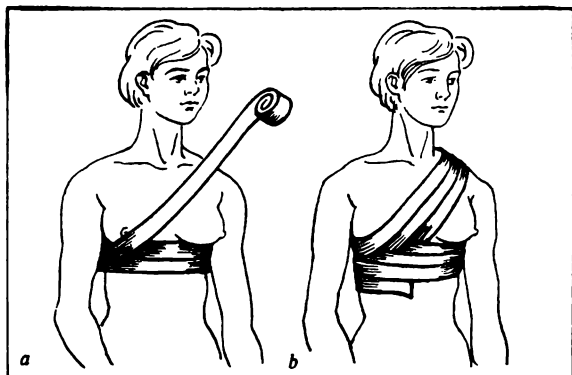
चित्र 33. (*a*, *b*). स्तन पर पट्टी।

जाते हैं, फिर बायें कंधे पर से गुजारते हैं। पट्टी को वक्ष के गिर्द जड़ते हैं (चित्र 32)।

स्तन टेकने के लिये पट्टी. दायें स्तन पर पट्टी डालने के लिये उसके कुछ नीचे वक्ष पर दायीं से बायीं दिशा में वृत्ताकार लपेटनें डालते हैं; इसके बाद पट्टी को दायीं ओर से तिरछा बायें कंधे पर से गुजारते हैं और पीठ पर उसे तिरछा रखते हुए दायीं काँख से सामने की ओर निकालते हैं। यहां से स्तन के निचले भाग को ढकते हुए और वक्ष तथा पीठ के गिर्द पट्टी डालते हुए उसको पुनः बायें कंधे के पार ले जाते हैं; पीठ पर तिरछा रखते हुए दायीं काँख से निकालते हैं और पिछली पट्टी का कुछ भाग तथा स्तन का नया ऊपरी भाग ढकते हुए उसे वक्ष और पीठ के गिर्द लपेटते हैं। फिर पुनः

दायीं कांख से निकालकर पट्टी को बायें कंधे के पार ले जाते हैं। यह प्रक्रिया कई बार दुहराते हुए पट्टी से पूरा स्तन ढक देते हैं (चित्र 33)।

उदर और जंघामूल पर पट्टी. उदर के ऊपरी या मध्य भाग में घाव को ढकने के लिये सर्पिल पट्टी पर्याप्त होती है। उदर के निचले भाग में, विशेषकर श्रोणि-प्रदेश (कूल्हे के क्षेत्र) में ऐसी पट्टी ठीक से नहीं टिकती, ससरने लगती है। इसीलिये उसका बाली जैसी पट्टी के साथ मेल कराना पड़ता है, जिससे जंघामूल और नितंब के साथ-साथ कूल्हे और जांघ के भी निकटवर्ती क्षेत्र ढक जाते हैं। पट्टी कई प्रकार की हो सकती है; यह इस बात पर निर्भर करता है कि पट्टी की लपेटनें एक-दूसरे को किस स्थल पर काटती हैं—आगे, पीछे या बगल में। चित्र 34 में जंघामूल पर बाली जैसी पट्टी दिखायी गयी है। पेट के गिर्द वृत्ताकार लपेटनों से पट्टी को स्थिर करते हैं, फिर उसे जांघ की भीतरी सतह पर जंघामूल से होते हुए पीछे से आगे (और बायें से दायें) लाते हैं। पट्टी को जांघ के गिर्द घुमाते हैं, फिर उसे जंघामूल की अग्र सतह पर उठाते हुए पीछे से कमर पर लपेट कर पुनः जंघामूल की ओर लाते हैं। लपेटनें ऊर्ध्वगामी भी हो सकती हैं और अधोगामी भी; यह इस बात पर निर्भर करता है कि पहली लपेटनें किस जगह से गुजरती हैं—ऊपर जंघामूल पर या नीचे जांघ पर। पट्टी को पेट के गिर्द वृत्ताकार लपेटनों से स्थिर करते हैं।
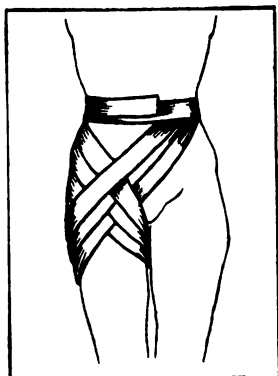
चित्र 34. जंघामूल पर बालीनुमा पट्टी।
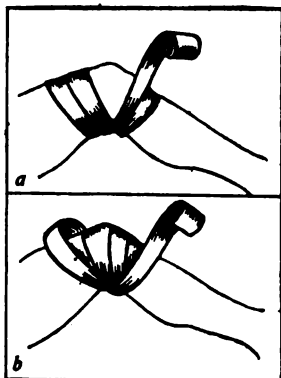
चित्र 35. (*a*, *b*) घुटने पर पट्टी।

पैरों पर पट्टियां. जांघ पर पट्टी उसी तरह बांधते हैं, जैसे कंधे और बांह पर। जांघ के ऊपरी भाग में पट्टी को कूल्हे पर लाकर बाली जैसी लपेटनों से स्थिर किया जा सकता है। टांग पर (घुटने और टखने के बीच के हिस्से पर) ऐंठन के साथ सर्पिल पट्टी भी डालते हैं, जो घुटने तक पहुंचायी जाती है। घुटनों पर (और कोहनियों पर भी) संसृत और अपसृत होने वाली लपेटनें डाली जाती हैं।

घुटने पर संसृत पट्टी घुटने की कटोरी के ऊपर वृत्ताकार लपेटनों से शुरू करते हैं। इसके बाद लपेटनें घुटने के पीछे गड्ढे में एक-दूसरी को काटती हुई सामने

कटोरी के ऊपर और नीचे से गुजरती जाती हैं जिससे पूरा घुटना ढँक जाता है (चित्र 35a)।

अपसृत पट्टी घुटने के ऊपर या नीचे वृत्ताकार लपेटनों से शुरू करते हैं। पट्टी की लपेटनें क्रमशः एक दूसरी के करीब आती जाती हैं (चित्र 35b)।

आवर्ती सर्पिल पट्टी शरीर की गोल सतहों के लिये उपयुक्त है। थूथ (उच्छेदित अंग के चौरस सिरे) को ढकने के लिये भी इसका उपयोग होता है। पहले जांघ के गिर्द चंद वृत्ताकार अनुप्रस्थ लपेटनें डालते हैं; इसके बाद पट्टी को समकोण पर मोड़ कर जांघ के अनुतीर नीचे लाते हैं और उच्छेदित सिरे को ढकते हुए आगे से पीछे ले जाते हैं (चित्र 36)। अनुप्रस्थ लपेटनों तक पहुँच कर पट्टी को पुनः समकोण पर मोड़ कर वृत्ताकार स्थिरकारी लपेटनें डालते हैं। इस तरह की अनुप्रस्थ और अनुतीर लपेटनें तब तक डालते जाते हैं, जबतक उच्छेदित सिरा पूरी तरह नहीं ढक जाता।

पिछली एड़ी पर संसृत या अपसृत पट्टी बांधी जा सकती है। लपेटनें डालना एड़ी के पिछले सबसे अधिक उभरे हुए भाग से शुरू करते हैं। बाद की लपेटनें बारी-बारी से प्रथम लपेटनों के ऊपरी तथा निचले भाग को आंशिक रूप से ढकते हुए डाली जाती हैं (चित्र 37)। पट्टी को स्थिर रखने के लिये फिर तलवे से होकर तिरछी लपेटनें डालते हैं।

टखने पर सलीबाकार (अंक 8 जैसी) पट्टी डाली जाती है – यदि पिछली एड़ी को नहीं ढकना है। पट्टी
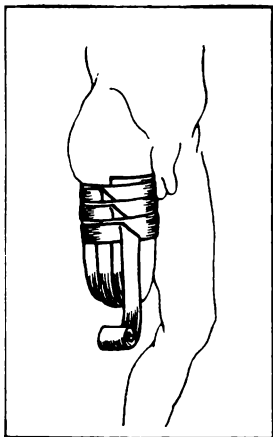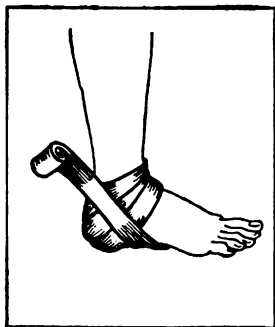
चित्र 36. थूथ पर पट्टी। चित्र 37. टखने पर पट्टी।
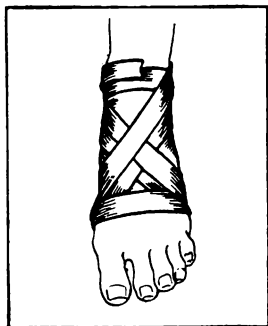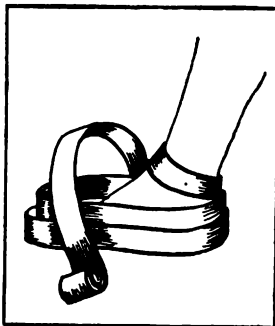
चित्र 38. तलवे पर पट्टी। चित्र 39. पूरे पादाग्र पर पट्टी।

बांधना गुल्फों (पिछली एड़ी के अगल-बगल, थोड़ा ऊपर स्थित हड्डियों के गोल उभारों; टखने की हड्डियों) के ऊपर से शुरू करते हैं; इसके बाद पट्टी को गोड़ के ऊपरी भाग पर तिरछा चलाकर तलवे से गुजारते हैं, फिर उसे गोड़ के ऊपरी भाग पर तिरछा चलाकर ऊपर की ओर ले जाते हैं, गुल्फों से ऊपर पिंडली के अर्धवृत्त को लपेटते हुए पुनः अंक 8 के रूप में पहले जैसी लपेटनें दुहराते हैं (चित्र 38)। पट्टी को गुल्फों से ऊपर वृत्ताकार लपेटनों की सहायता से स्थिर करते हैं।

यदि पूरे गोड़ को ढकना हो (गोड़ उंगलियों से पिछली एड़ी और टखने तक के भाग–पादाग्र–को कहते हैं), तो गुल्फों के ऊपर वृत्ताकार लपेटनें लगाकर पट्टी को बिना कस कर ताने हुए एड़ी के गिर्द कुछेक बार घुमा लेते हैं, फिर गोड़ को उंगलियों की ओर से सर्पिल लपेटनों से ढकते जाते हैं (चित्र 39)।

शरीर की ऐसी जगहों पर, जहां पट्टी ठीक से नहीं टिकती है या उसे बांधने में बहुत अधिक समय लगता है, छोटी-मोटी पुल्टिस को त्वचा के साथ चिपका देना अच्छा होता है। इसके लिये चिपकदार प्लास्टर (स्टिकर) का उपयोग किया जा सकता है।

चिपकदार प्लास्टर इतना लंबा लेते हैं कि उसकी किनारी पुल्टिस की लंबाई से 5—6 सेंटीमीटर आगे निकली रहे।

छोटी-मोटी चोटों का प्राथमिक उपचार

दैनंदिन जीवन में अक्सर छोटी-मोटी चोटें लगती रहती हैं। कभी कहीं कुछ कट जाता है, तो कभी कुछ चुभ जाता है, खरोंच लग जाती है। ये चोटें खतरनाक नहीं होतीं, इनसे आदमी अपनी कार्य-क्षमता नहीं खोता, पर इनका भी सही प्राथमिक उपचार नहीं होने पर पूयशोथ जैसी जटिलता उत्पन्न हो जा सकती है।

त्वचा में नन्हे आकार की भी क्षति होने पर तुरंत 5% टिंचर आयडीन लेप कर निस्सृपक पट्टी लगा देनी चाहिये। यदि त्वचा और घाव पर गंदगी आ गयी हो, घाव के गिर्द त्वचा को अमोनियम हाइड्रोक्साइड के 0.5 प्रतिशत घोल से धो देना चाहिये। घाव को हाइड्रोजन पेरोक्साइड के 3% घोल से धोना चाहिये। यदि घाव की किनारी चिकनी है और घाव 0.5 cm से अधिक चौड़ा है, तो धोने के बाद उसकी किनारियों को निकट लाते हैं। इसके लिये चिपकदार प्लास्टर (स्टिकर) का एक टुकड़ा (घाव से छोटा) लेते हैं, उसके एक सिरे को घाव के एक तरफ त्वचा से चिपका देते हैं; घाव के दूसरी तरफ की त्वचा को निकट लाते हैं और प्लास्टर के दूसरे सिरे से चिपका कर स्थिर कर देते हैं। प्लास्टर से पूरा घाव नहीं ढकना चाहिये, निकट लायी गयी त्वचा के कोण खुले रहने चाहिये। प्लास्टर के ऊपर घाव पर निस्सृपक पट्टी लगायी जाती है। बहुत छोटे घाव या

खरोंच पर सीधा कोलोडियन या कोई सुलेशन (रबड़-गोंद) ढाल देना चाहिये।

चुभने से बने घाव पर स्पीरिट-पट्टी (स्पीरिट में भीगे पुल्टिस पर पट्टी) बांधनी चाहिये।

उंगली कुचलने पर अक्सर नख के नीचे रक्तस्राव हो जाता है, जो बाद में पक कर तीव्र शोथ उत्पन्न कर सकता है। इस जटिलता को रोकने के लिये डाक्टर की सहायता लेनी चाहिये। वह स्रावित रक्त को बाहर निकाल कर स्पीरिट की पट्टी लगा देगा। यह एक सरल कार्य है, इसमें वेदनाहरण की आवश्यकता नहीं पड़ती।

यदि त्वचा में आँखों से अच्छी तरह दिखने वाली कोई परज (बाहरी) वस्तु चुभ जाती है, जैसे सूई का टुकड़ा, नन्ही खपची आदि, तो उसे चिमटी से निकालना चाहिये; घाव पर टिंचर आयडीन लगा कर स्पीरिट की पट्टी बांध देते हैं।

सर्प-दंश

सर्प-दंश से मृत्यु भी हो सकती है। सर्प-दंश की अस्सी प्रतिशत घटनाएं एशिया, अफ्रीका और दक्षिणी अमरीका में होती हैं। अकेले भारत में प्रतिवर्ष 100 000 व्यक्ति इसके शिकार होते हैं।

जहरीले साँप के विष की थैली उसके ऊपरी दाँतों के ऊपर रहती है। जब वह काटता है, विष दंश-व्रण

से हो कर रक्त-कुंभियों में प्रविष्ट हो जाता है और रक्त के साथ-साथ पूरे शरीर में फैल जाता है।

सांपों के विष में अलग-अलग प्रकार के जहरीले पदार्थ होते हैं। समुद्री और प्रवालवासी सर्पों तथा चंद प्रकार के रैंटल-सर्पों के विष में नर्व-तंत्र को प्रभावित करने वाले द्रव्य होते हैं। कुछ सांपों के विष में रक्त-कुंभियों तथा हृदय के कार्य को दमित करने वाले पदार्थ होते हैं, जो रक्त-स्कंदन की क्रिया को क्षति पहुँचाते हैं। इसीलिये सभी सांपों के जहर चढ़ने के लक्षण एक समान नहीं होते। सामान्य विषाक्रांति (जहर चढ़ने) के लक्षण सांप काटने के कोई 30—90 मिनट बाद नजर आते हैं। मरीज में हृदज अभिघात या रक्तदाब में कमी के साथ निपात (कोलैप्स) और श्वसन से संबंधित केंद्रों व पेशियों में लकवा के कारण सांस रुकने जैसी अवस्था विकसित हो जा सकती है।

प्रवालवासी व समुद्री सर्पों के दंश-स्थल पर दो दांतों के चुभने के निशान होते हैं, चमड़ी हल्की शोफित हो जाती है। वीपेर (वाइपर, गेहुँअन या रैंटल-सर्प) के दंश-स्थल पर हल्के से जलने की अनुभूति होती है, चमड़ी लाल और शोफित हो जाती है, रक्तस्राव होता है, फिर दंश-स्थल से पूरे अंग में स्कंदक्लेश फैलने लगता है (खून थक्कों के रूप में जमने लगता है)।

प्राथमिक उपचार. दंश-स्थल को करीब 15 मिनट तक तेजी से चूसना चाहिये। मुंह से चूसने पर प्रथम छे मिनट में करीब तीन चौथाई विष निकल आता है। यदि

दंश-स्थल पर घाव सूख गया है, तो आस-पास की चमड़ी को निकट ला कर कस के दबाना चाहिये, ताकि घाव का मुंह खुल जाये। चूसने का काम स्तन-चोषक उपकरण से या रबड़ की गेंद जैसे पंप से किया जा सकता है। इन उपकरणों की अनुपस्थिति में मुंह से चूसना चाहिये। मुंह में विष तेजी से विघटित हो जाता है, इसलिये यह काम खतरनाक नहीं होता। यदि होठों पर खरोंच या घाव हों, तो भी डरने की बात नहीं है; सांप द्वारा छोड़े गये विष की मात्रा बहुत कम होती है।

विष-चोषण के बाद दंश-स्थल पर टिंचर आयडीन, स्पीरिट या ब्रिलिएंट ग्रीन (चमकदार हरा) का लेप लगाना चाहिये। अंग को अचल कर देना चाहिये; उसके हिलने-डुलने या गति करने से शरीर के अन्य भागों में विषाक्त रक्त के फैलने का खतरा रहता है। विपुल मात्रा में पेय पदार्थ (चाय, कौफी, शोरुवा आदि) देना चाहिये। अल्कोहल (शराब आदि) कभी भी किसी भी रूप में पीने के लिये नहीं देना चाहिये। दंशित अंग को कभी भी बांधना नहीं चाहिये; दंश-स्थल को बारूद, अम्ल, क्षार, खौलते तेल आदि से दागना भी नहीं चाहिये।

प्राथमिक उपचार के बाद रोगी को यथाशीघ्र निकटतम अस्पताल ले जाना चाहिये, जहां उसे विषहर सीरम (एंटीगुर्जा, एंटीएफा, एंटीकोब्रा आदि) दिया जा सके।

सर्प-दंश से बचने के लिये चमड़े के ऊँचे जूते और

मोटे कपड़े पहनने चाहिये, निवास-स्थल के आस-पास के क्षेत्र का ध्यानपूर्वक निरीक्षण कर लेना चाहिये।

यह याद रखना चाहिये कि साँप साधारणतः आदमी पर आक्रमण नहीं करता, वह सिर्फ आत्मरक्षा करता है। साँप उन्हीं को काटता है, जो उसे मारने या पकड़ने का प्रयत्न करते हैं।

भीतरी चोटें

भीतरी चोट ऐसी यांत्रिक क्षतियों को कहते हैं, जिसमें चमड़ी और श्लेष्मल झिल्ली अक्षत रहती हैं।

भीतरी चोट के उदाहरण हैं: शरीर के भिन्न क्षेत्रों का धमसन; खोपड़ी (कपाल) और मस्तिष्क का धमसन भी इसी श्रेणी में आता है; अस्थि-आबंधों का मोच (अस्थि-संधियों पर हड्डियों को जोड़ कर रखने वाले विशेष रेशेदार तंतुओं का लमड़ाव, उनका अपने स्थान से खिसकना, उनमें विदार उत्पन्न होना, आदि); खसकन (जोड़ से हड्डी का उतरना); त्वचा के नीचे पेशियों का विदार; वक्ष तथा उदर के कोटरों में स्थित आंतर अंगों का विदार; विभंजन – अस्थि-भंग, हड्डी का टूटना।

धमसन किसी भारी कुंद वस्तु से भीतरी चोट के कारण होता है या गिरने के कारण। चोटग्रस्त स्थल पर दर्द होता है और भीतर ही भीतर रक्तस्राव होता है, जिसके कारण स्थल नीला पड़ जाता है।

प्राथमिक उपचार. दर्द कम करने के लिये और भीतरी रक्तस्राव रोकने के लिये धमसित स्थल को विश्रामावस्था में रखना चाहिये; उसे कुछ ऊँचाई पर स्थित रखना चाहिये, ताकि उस ओर रक्तप्रवाह कम हो। स्थल को बर्फ की थैली या शीतल पुल्टिस से ठंडा करना चाहिये। ठंडक से रक्तवाही कुंभियां संकुचित होने लगती हैं और रक्तस्राव कम हो जाता है। धमसन के दो-तीन दिन बाद ऊष्मा का प्रयोग करना चाहिये, जिससे स्रावित रक्त का अपचोषण तीव्र हो जाता है। ऊष्मा का प्रयोग ऊष्मकारी पुल्टिस या स्थानिक ऊष्म स्नान (गर्म पानी में धमसित अंग को डुबाये रखने) से होता है।

ऊष्मकारी पुल्टिस बनाने की विधि निम्न है: कपड़े की कई तहों से बनी गद्दी पानी में भिगोते हैं, फिर उसे स्पीरिट के 8% घोल में या कैंफर के तेल में डुबो कर निचोड़ लेते हैं और चमड़ी पर फैला देते हैं। इसके ऊपर प्लास्टिक का कपड़ा या मोमी कागज रखते हैं (इसका आकार भीगी गद्दी से 2—3 सेंटीमीटर अधिक होना चाहिये)। इसके ऊपर रूई की मोटी परत लपेट कर पट्टी बांध देते हैं। पुल्टिस 6—8 घंटे तक रखते हैं। इस अवधि में भीगी परत सूख जाती है। पुल्टिस हटाने के बाद चमड़ी पर स्पीरिट की मालिश करते हैं।

मोच अक्सर आती रहती है। फिसलते वक्त या अस्थियों के संधि-स्थल पर असावधान व बेढंगी गति के कारण उत्पन्न मरोड़ से वहां अस्थियां विपरीत दिशा में

मुड़ पड़ती हैं। इससे संधि-संपुट (जोड़ की कटोरी) या अस्थि-आबंध में विदार पैदा हो जाता है। दर्द होता है और संधि-स्थल फूल जाता है, यद्यपि संधि की पर्याकृति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता। आहत व्यक्ति रोगी पैर पर खड़ा हो सकता है या रोगी हाथ को हिला-डुला सकता है, यद्यपि इसमें उसे बहुत कठिनाई होती है। कुछ दिन बाद चमड़ी काली-नीली हो जाती है; यह इस बात का सूचक है कि आंतरिक रक्तस्राव हुआ था।

प्राथमिक उपचार. क्षत संधि को विश्राम में (निश्चल) रखना चाहिये। इसके लिये हाथ को तिकोण पट्टी से लटका देते हैं; टखने को चोट पहुँचने पर उसे पट्टी से कस कर लपेट देते हैं, ताकि संधि पर कोई गति संभव न हो। 2—3 दिन बाद ऊष्मोपचार (ऊष्मकारी पुल्टिस, स्थानिक ऊष्म स्नान, मालिश आदि) शुरू करते हैं।

खसकन अधिक गंभीर क्षति है; इसमें हड्डी अपने जोड़ पर से खसक आती है, साथ-साथ संधि-संपुट में विदार भी होता है और संधि की अन्य अस्थियों को भी अपनी जगह से खसका देता है।

प्राथमिक उपचार. निश्चलकारी पट्टी या खपची बांधते हैं, फिर आहत को अस्पताल पहुँचाते हैं, जहां डाक्टर खसकी हड्डी को वापस अपने स्थान पर ला देता है।

विभंजन भीतरी या बाहरी होता है। बाहरी विभंजन में हड्डी टूटने के साथ-साथ चमड़ी भी फट जाती है

और घाव बन जाता है। यह सबसे खतरनाक स्थिति है, क्योंकि घाव से हो कर पूयन (घाव का पकना) गैस-कारी विगलन या धनुर्वात उत्पन्न करने वाले जीवाणु प्रवेश कर जा सकते हैं। भीतरी विभंजन में बाह्य आवरण (चमड़ी या श्लेष्मल झिल्ली) अक्षत रहता है, अतः जीवाणु प्रवेश नहीं कर पाते।

हाथ-पैर की लंबी नलीनुमा हड्डियों के टूटने के निम्न लक्षण हैं: दर्द, आंतरिक रक्तस्राव, चोट के क्षेत्र की सामान्य आकृति में परिवर्तन, हाथ या पैर के जिस क्षेत्र में उसे मुड़ना नहीं चाहिये वहां उसका मुड़ना, कट-कट की या चटखने की ध्वनि, सूजन (फूलना), हाथ या पैर हिलाने-डुलाने में असमर्थता।

टूटी हड्डी के खंड एक-दूसरे के सापेक्ष भिन्न लंबाई; चौड़ाई या कोण पर स्थानांतिरत हो सकते हैं। अंग के बाह्य रूप में विकृति का कारण यही है।

आग्नेयास्त्र से चोट लगने पर हड्डियों और उनके गिर्द मुलायम ऊतकों में विशेष विस्तृत क्षति पहुँचती है। गोले, बम आदि के टुकड़े इर्द-गिर्द के ऊतकों, नर्वों और रक्तवाही कुंभियों को क्षति पहुँचाते हैं। कपड़े के टुकड़ों और मिट्टी के साथ घाव में प्रविष्ट हानिकर जीवाणुओं के लिये क्षत, रक्तरंजित पेशियां एक अच्छे पोषक माध्यम का काम करती हैं।

प्राथमिक उपचार. आहत हाथ या पैर के लिये विश्राम की परिस्थितियां बनानी चाहिये (उन्हें निश्चल कर देना चाहिये)। रोगी के परिवहन के समय यह

विशेष रूप से आवश्यक है। हड्डी के खंडों को इस तरह स्थिर कर देना चाहिये कि वे हिल-डुल या मुड़ न सकें, अन्यथा गंभीर प्राणघातक जटिलताएं उत्पन्न हो सकती हैं। विभंजित अस्थि को निश्चल करने की विधियां अनुच्छेद "हाथ-पैर की क्षतियां" में देखें (पृ० 86)।

सर और चेहरे की क्षतियां

सर और चेहरे के घायल होने पर तीव्र बाह्य रक्तस्राव होता है, क्योंकि इस क्षेत्र में रक्तवाही कुंभियों का विस्तृत जाल फैला होता है।

बाह्य रक्तस्राव संपीडक पट्टी की सहायता से रोकते हैं। चाँद या कनपटी के क्षेत्र से तीव्र बाह्य रक्तस्राव होने पर घायल पार्श्व में कनपटी की धमनी को उंगली से तबतक दबा कर रखना चाहिये, जबतक अच्छी कसी हुई संपीडक पट्टी न बंध जाये।

क्षत नाक से खून बहने पर रोगी को बात करने या नाक छिड़कने से मना करना चाहिये, नाक और पश्चकपाल पर बर्फ, ठंडे पानी की थैली या शीतल पुल्टिस रखनी चाहिये। नाक में रूई की गोलियाँ घुसा कर उंगलियों से नाक की पार्श्व दीवारों को यथासंभव ऊपर काफी जोर से दबाना चाहिये। सर को थोड़ा आगे झुका कर रखना चाहिये, ताकि रक्त नासाग्रसनी में नहीं बहे, नासा-कोटर के अग्रभाग में बहे और वहीं स्कंदित हो जाये।

कपाल (खोपड़ी) और मस्तिष्क में भीतरी चोट की घटनाएं अक्सर प्रेक्षित होती हैं। इसका कारण सर पर आघात, जोरदार धक्का, कस कर गिरना आदि हो सकता है। अक्सर क्षति के स्थानिक लक्षण आँख से नहीं दिखते या चेहरे और सर पर सिर्फ आंतरिक रक्तस्राव और खरोंच के चिन्ह नजर आते हैं। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि कपाल के अंदर मस्तिष्क को कोई चोट नहीं पहुँची है, उसका झर्झन (झंझोड़न) या धमसन नहीं हुआ है।

मस्तिष्क में चोट के कारण मस्तिष्क-कोटरों में स्थित द्रव के संचार और रक्त-संचार में गड़बड़ी उत्पन्न होती है। मस्तिष्क-द्रव्य शोफित हो जाता है, उसमें भिन्न स्थानों पर भिन्न मात्राओं में आंतरिक रक्तस्राव होता है। हल्की अवस्था में ये परिवर्तन प्रमस्तिष्क-वल्कुट की क्रियाओं को दमित कर देते हैं (प्रमस्तिष्क-वल्कुट मस्तिष्क के वृहत गोलार्धों की ऊपरी परत को कहते हैं, जो भूरे द्रव्य से बनी होती है; इसमें नर्व-कोशिकाएं और उनकी शाखाएं होती हैं)। गंभीर अवस्था में वे जीवनावश्यक शरीर-क्रियाओं – श्वसन और रक्तसंचार – में गड़बड़ी उत्पन्न करते हैं।

मस्तिष्क के झर्झन (झंझोड़न) से चोट के समय बेहोशी आती है, जो कुछ मिनटों के लिये भी हो सकती है और लगातार कई घंटों के लिये भी। इसके अतिरिक्त वमन, मंदित (और कभी-कभी तो उल्टा, त्वरित) नाड़ी, चोट-पूर्व की घटनाओं की विस्मृति भी अवलोकित

होती है। होश ग्राने पर ग्राहत सरदर्द ग्रौर सामान्य कमजोरी की शिकायत करता है। चोट से संबंधित घटनाएं उसे याद नहीं रहतीं।

मस्तिष्क में धमसन से ग्रवस्था ग्रधिक गंभीर रहती है, यद्यपि बाह्य लक्षण मस्तिष्क-झर्झन जैसे ही होते हैं। रोग के लक्षण बाद में गायब नहीं होते, उल्टा बढ़ते जाते हैं। बेहोशी चोट लगने के 1—2 घंटे बाद भी ग्रा सकती है, जब क्षत कुंभियों से रिसता हुग्रा रक्त कपाल-कोटर को भर देता है ग्रौर भीतर ही भीतर मस्तिष्क को दबाने लगाता है। स्थानीय लकवा हो जाता है ग्रौर पेशियों में हुकहुकी से भरी ऐंठन उत्पन्न होती है।

चांद की हड्डी ग्रौर विशेषकर उसके ग्राधार का टूटना ग्रौर भी खतरनाक होता है। ये विभंजन भीतरी भी हो सकते हैं ग्रौर खुले हुए भी। हड्डियों के टुकड़े कपाल-कोटर में धँस जाते हैं ग्रौर मस्तिष्क के बाह्य कठोर ग्रावरण, मस्तिष्क-द्रव्य ग्रौर उसकी कुंभियों को क्षति पहुँचाते हैं।

ग्रधिकांश स्थितियों में कपाल के विभंजन से ग्राहत व्यक्ति होश खो देता है। मस्तिष्क-झर्झन के विशिष्ट लक्षण—वमन, नाड़ी का मंदन, ग्रादि—ग्रवलोकित होते हैं। इसके ग्रतिरिक्त, मस्तिष्क के कुछ भाग ग्रपना काम करने में ग्रसमर्थ हो जाते हैं, जिससे हाथ या पैर को लकवा मार जाता है, ग्राँख की गति में गड़बड़ी उत्पन्न होती है, चेहरा टेढ़ा हो जाता है या वाक्-भंग विकसित हो जाता है।

कपाल के आधार के विभंजन के लक्षण निम्न हैं: गहरी मूर्छा; नाक, कान और मुंह से खून का और कभी-कभी रीढ़ के द्रव का भी स्राव।

क्षति का सही मूल्यांकन डाक्टर ही कर सकता है।

प्राथमिक उपचार. यदि आहत बेहोश है और जीभ भर जाने से उसे साँस लेने में कठिनाई हो रही है, तो मुंह साफ करना चाहिये, निचले जबड़े को नीचे कर के उसे खुला रखना चाहिये, आवश्यकतानुसार जीभ को कंठ से निकाल कर उसे सामान्य स्थिति में रोकने का इंतजाम करना चाहिये। बीमार को करवट के बल लिटाना चाहिये, सर पर बर्फ की (या शीतल) पुल्टिस रखनी चाहिये और उसे सावधानीपूर्वक बिना झटके लगाये अस्पताल पहुँचाना चाहिये।

यदि सर पर घाव हो, तो आस-पास का बाल यथा-संभव मुंड़ देना चाहिये या बहुत छोटा-छोटा काट देना चाहिये, घाव के गिर्द त्वचा पर कोई निष्पूँठक दवा लेप कर निष्कीटित पट्टी बांध देनी चाहिये।

निचले जबड़े की खसकन. ठुड्डी पर आघात से या मुंह बहुत अधिक खोलने से निचले जबड़े की खसकन हो जा सकती है। इसके लक्षण बहुत विशिष्ट हैं: दर्द, मुंह खोलने में असमर्थता, आगे की ओर खिसकी हुई ठुड्डी, आहत पार्श्व पर जबड़े की घुंडी (जोड़ पर) के क्षेत्र में झुलाव। आहत को तुरंत डाक्टर के पास ले जाना चाहिये। यदि शीघ्र ऐसा संभव नहीं है, तो उसका उपचार करना चाहिये।

प्राथमिक उपचार. आहत को छोटे (नीचे) स्टूल पर बैठाते हैं। सहायक उसके पीछे खड़ा होकर उसका सर स्थिर करता है। उपचारकर्ता निचले जबड़े को दृढ़ता से पकड़े रहता है। वह अपने अंगूठों को मुंह में घुसा कर इस प्रकार रखता है कि अंगूठे निचले जबड़े के पिछले दाढ़ों पर पड़ें।

अंगूठे से धीरे-धीरे दबाते हुए जबड़े को नीचे खिस-काते हैं। एक क्षण ऐसा आता है, जब जबड़े की घुंडी अपने ठीक स्थान पर पहुँच जाती है और जबड़ा बंद हो जाता है।

जबड़े का विभंजन भीतरी भी हो सकता है और बाहरी (खुला हुआ) भी। निचले जबड़े पर आग्नेयास्त्र की चोट से बहुत अधिक अस्थि-भंग होता है। बड़े रक्त-रंजित घाव और चेहरे की विकृति के कारण आहत की अवस्था विशेष रूप से गंभीर और यहां तक कि निरा-शाजनक प्रतीत होती है।

प्राथमिक उपचार. संपीडक पट्टी बांध कर रक्तस्राव रोकना चाहिये। जबड़े के खंडों को मानक या काम-चलाऊ खपचियों की सहायता से अस्थायी तौर पर अपनी जगह पर स्थिर कर देते हैं।

ऊपरी जबड़े के आंतरिक विभंजन का बोध चेहरे की विकृति (टेढ़ापन), पीड़ादायक सूजन, चेहरे के अस्थि-पंजर की पर्याकृति को टटोलने पर विषमता के आभास आदि लक्षणों से होता है।

यदि ऊपरी जबड़ा अक्षत हो और उसमें तथा निचले

जबड़े में पर्याप्त दाँत मौजूद हों, तो निचले जबड़े के खंडों को उनकी सही स्थिति में लाकर उसे कठोर चौपुच्छी पट्टी या गजी की पट्टी से निश्चल कर देते हैं। निचले जबड़े की किनारी के समांतर-समांतर गजी की नन्हीं मसनदें लगा देना अच्छा होता है।

आग्नेयास्त्र से जबड़ों के घायल होने पर साँसनली में रक्त का बह आना, जीभ का कंठ में गिरना, साँस में गड़बड़ी आदि अधिक हानि पहुँचाते हैं। बेहोश घायल की कंठ में गिरी जीभ को खींच कर निकलना चाहिये और उसे पट्टी के पैकेट में पड़े सेफ्टीपिन से नत्थी कर के पट्टी के साथ जड़ देना चाहिये।

घायल का परिवहन इस तरह करते हैं कि उसका सर घाव की तरफ करवट लिये रहे।

आँखों की क्षतियों के रूप में अक्सर झुलसन और नेत्रकोया अथवा युतिका में परज (बाहरी) वस्तुओं के चुभने से उत्पन्न नन्हे घाव अवलोकित होते हैं। (युतिका उस झिल्ली को कहते हैं, जो आँख की पूरी सफेद सतह को आच्छादित रखती है और आगे पलकों की भीतरी सतह पर भी फैली रहती है।)

आंख में परज वस्तु चुभने से क्षोभ (जलन), दर्द और अश्रुस्राव होता है। परज वस्तु (बालू या कोयले का कण, नन्हा कीड़ा आदि) यदि दृढ़पटल या युतिका में चुभी नहीं है, तो उसे साधारण आदमी भी दूर कर सकता है। इसके लिये ऊपरी पलक को खींचना पड़ता है, और कभी-कभी तो उसे उलटना भी पड़ता है। ऊप-

री पपनी को आगे-नीचे की दिशा में खींचते हुए पलक की जड़ के पास तर्जनी का सिरा इस प्रकार रखते हैं कि पलक उसके नीचे मुड़ कर उलट जाती है। निचली पलक के पीछे श्लेष्मल झिल्ली देखने के लिये पलक की जड़ पर उसे उंगली से दबाकर नीचे की ओर खींचना पर्याप्त रहता है।

युतिकीय संपुट में पड़ी हुई परज वस्तु को रूमाल या गजी के ऐंठे हुए कोने से दूर किया जाता है (चित्र 40)।
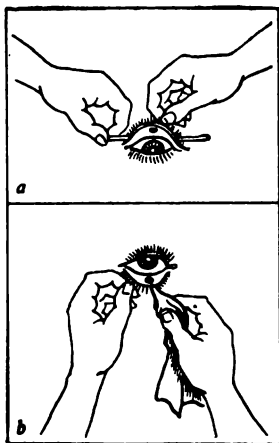
चित्र 40. पलक उलट कर परज वस्तु निकालना (*a*, *b*)।

तेज धूल पड़ने पर आँख को धोते हैं।

आँख में क्षारीय या अम्लीय द्रव्य पड़ने पर भी यही करते हैं। आँख के जलने या घायल होने पर निस्सृपक पट्टी बांधते हैं।

वक्ष की क्षतियां

वक्ष में चोट से अक्सर पसलियां टूटती हैं (विभंजन)। यह गिरने पर, टक्कर से या वक्ष के दबने से होता है।

विभंजन के लक्षण: साँस लेने पर जहां चोट लगी होती है, वहां दर्द होता है। विभंजन-स्थल पर दबाने से या वक्ष-पंजर को आगे-पीछे या बगल की ओर दबाने से दर्द और भी तेज होने लगता है।

टूटी पसलियों की टुकड़ियों से प्लूरा (वक्ष-कोटर की भीतरी सतह और फुप्फुसों की ऊपरी सतह के सीरमी आवरण) को या फुप्फुसी ऊतक को क्षति पहुँच सकती है। ऐसी स्थिति में खाँसी का दौरा पड़ता है और इसके साथ रक्तोत्सर्ग होता है। विरलत: प्लूरिक कोटर (वक्ष-कोटर की भीतरी सतह और फेफड़ों की बाहरी सतह को आच्छादित करने वाली प्लूरा के खाली स्थान) की हवा प्लूरा के क्षत स्थान से निकल कर चमड़ी के नीचे फुलाव (वातस्फीति) उत्पन्न कर देती है। हवा अधोत्वक वसा (चमड़ी के नीचे की वसा) पर फैलती हुई गरदन और चेहरे तक पहुँच जाती है, जिससे वसा की परत मोटी प्रतीत होती है, चेहरा फुला-फुला लगता है।

प्राथमिक उपचार. अचलकारी पट्टी बांधनी चाहिये। चिपकदार प्लास्टर की 5 सेंटीमीटर चौड़ी कई पट्टियां टूटी पसली पर रीढ़ से वक्ष तक साँस छोड़ते वक्त चिपका देते हैं। चिपकदार प्लास्टर के ऊपर सामान्य सर्पिलाकार पट्टी बांधते हैं या वक्ष को तौलिये या गमछे से लपेट कर उसके सिरों को सी देते हैं।

आवश्यकतानुसार वेदनाहर गोलियां देते हैं।

वक्ष में घाव यदि छूरा मारने से होता है, तो वह

प्लूरिक कोटर तक छेद के रूप में होता है। वक्ष-कोटर में सामान्यतः स्थायी ऋणात्मक (सामान्य से कम) दाब रहता है। फुप्फुसों (फेफड़ों) और प्लूरिक कोटर की दीवारों के बीच हवा नहीं होती। जब पसलियों के बीच की पेशियां तनती हैं, तब पसलियां उभरती हैं, महा-प्राचीरा (वक्षीय और उदरीय कोटरों को अलग करने वाला पर्दा) समतल होने लगती है और वक्षीय कोटर फैलने लगता है, अर्थात फुप्फुस में साँसनली और उसकी शाखाओं (ब्रोंखों) के रास्ते बाहरी हवा के खिंचने की परिस्थितियां उत्पन्न होती हैं। वक्षीय कोटर के फैलने के साथ-साथ फुप्फुस भी फैलते हैं और इस तरह साँस ली जाती है। वक्ष-पिंजर की पेशियों के शिथिलन से पसलियां बैठने लगती हैं और भीतर की हवा दब कर बाहर निकलने लगती है, जिससे साँस छूटने की क्रिया संपन्न होती है।

वक्ष की भित्ती या फुप्फुस के घायल होने पर प्लूरिक कोटर की वायुरुधता भंग हो जाती है, बाहर की हवा घाव से होकर प्लूरिक कोटर में पहुँच जाती है, फुप्फुस सिकुड़ जाती है और साँस लेना बंद कर देती है। प्लूरिक कोटर में हवा का प्रवेश न्यूमोथोरैक्स (वक्षवात) कहलाता है। घाव के नन्हे छेद से जब हवा प्लूरिक कोटर में बहुत कम मात्रा में प्रविष्ट होती है, तो फुप्फुस दबाव से कम सिकुड़ती है और साँस की क्रिया में कुछ हद तक भाग लेती रहती है। यदि घाव की किनारियां आपस में चिपक जाती हैं तथा अब और अधिक हवा

अंदर नहीं जा सकती, तो ऐसी अवस्था को बंद वक्षवात कहते हैं।

वक्ष में विस्तृत खुले घाव से अन्य स्थिति प्रेक्षित होती है: क्षत पार्श्व की फुप्फुस पूर्णतया सिकुड़ी होती है और वह श्वसन में बिल्कुल भाग नहीं लेती। वक्ष-कोटर जब साँस लेने के लिये गति करता है, तो घाव के छेद से ही हवा का स्वच्छंद आवागमन होने लगता है। प्लूरिक कोटर की वायुरुधता भंग होने से तथा फुप्फुस की श्वास-क्रिया रुक जाने से ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न होती हैं, जिनसे मध्याकाशीय (वक्ष-कोटर के मध्य भाग में फुप्फुसों के बीच स्थित) अंग तेजी से क्षत पार्श्व की ओर स्थानांतरित होने लगते हैं, स्वस्थ फुप्फुस के साँस लेने से मध्याकाश में दोलन (कंपन) उत्पन्न होने लगते हैं, मध्याकाश में स्थित बड़ी रक्तवाही कुंभियों (नलिकाओं) में मोड़ तथा नर्व-शिराओं में
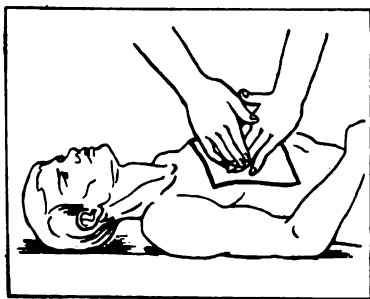
चित्र 41. खुला वक्षवातन होने पर वातरोधी पट्टी।

क्षोभ उत्पन्न होने लगते हैं। यह एक गंभीर अवस्था है, जिसे खुला वक्षवात कहते हैं। अक्सर यह अवस्था अभिघात के कारण जटिल हो जाती है और इसमें मृत्यु का खतरा रहता है।

प्राथमिक उपचार. प्लूरिक कोटर में हवा का प्रवेश जल्द से जल्द रोकना चाहिये। इसके लिये वायुरोधक पट्टी बांधते हैं। पट्टी का पैकेट जिस रबड़कृत आवरण में लिपटा रहता है, वह इस काम में सहायक होता है; उसकी भीतरी निष्कीटित सतह घाव पर रखते हैं। उसे घाव के आकार से काफी बड़ा होना चाहिये, ताकि आस-पास की त्वचा भी ढकी जा सके (चित्र 41)। पट्टी अच्छी तरह से चिपकी रहे, इसके लिये घाव के गिर्द त्वचा पर वैजेलीन या क्लेओलीन लेप देते हैं। इसके ऊपर पट्टी की वृत्ताकार लपेटनें डालते हैं। यदि पैकेट न हो, तो पट्टी कस कर बांधने से भी काम चल सकता है। भारी-भरकम पट्टी से घाव अच्छी तरह कस कर ढकना चाहिये, ताकि साँस लेते वक्त प्लूरिक कोटर में हवा प्रवेश न करे (अवरोधक पट्टी)। आहत को अधलेटी अवस्था में ले जाना चाहिये, ताकि शरीर का ऊपरी भाग थोड़ा उठा रहे। फुप्फुस के घायल होने के कारण यदि खाँसी के साथ बहुत अधिक रक्त आ रहा हो, तो आहत को सलाह देते हैं कि वह बोले नहीं, यथासंभव खाँसे भी नहीं और आराम से साँस ले। वक्ष पर बर्फ की थैली या शीतल पुल्टिस रखते हैं, हल्का नमकीन ठंडा पानी पीने को देते हैं, बर्फ की टुकड़ियां निगलने को देते हैं।

उदरस्थ अंगों की क्षतियां

उदर की दीवारों के धमसन से उदरस्थ आंतर अंगों को क्षति पहुँच सकती है। यह यकृत, प्लीहा, आँत या जठर का विदार हो सकता है। यकृत, प्लीहा तथा आंत्र-युतिकाओं की कुंभियों के विदार से आंतर रक्तस्राव शुरू हो सकता है, जो जीवन के लिये घातक होता है (आंत्र-युतिका उदरस्थ अंगों, विशेषकर आँतों को उदर-भित्ति के साथ जोड़ने वाली झिल्लियों को कहते हैं)।

जठर व आँत जैसे खोखले अंगों की दीवारों में क्षति से परितानिकाशोथ नामक एक गंभीर जटिलता विकसित हो सकती है (परितानिका उदरीय कोटर की भीतरी सतह तथा उदरस्थ आंतर अंगों की ऊपरी सतहों को आच्छादित रखने वाले सीरमी आवरणों को कहते हैं)। इस जटिलता का कारण यह है कि जठर, आँत आदि अंगों के भीतर उपस्थित द्रव्य में ढेर सारे जीवाणु होते हैं। इन अंगों के बिंधने से भीतर का द्रव्य बाहर उदरीय कोटर में फैल जाता है और जीवाणु शोथ उत्पन्न करने लगते हैं। यकृत और विशेषकर बड़ी पित्तवाहिकाओं के घायल होने पर पित्त उदरीय कोटर में पहुँच जाता है, जिससे खतरनाक पित्तज परितानिकाशोथ उत्पन्न होता है।

वृक्क (गुर्दे) और मूत्राशय उदरीय कोटर की सीमा से बाहर होते हैं, फिर भी उनमें अत्यधिक विदार से (यदि चोट कस कर लगी हो) रक्त और मूत्र परिता-

निका-पार के क्षेत्र में एकत्रित होने लगते हैं; कूल्हे के मुलायम ऊतक उन्हें सोखते हुए उदरीय कोटर में पहुँचा देते हैं। वहां वे परितानिकाशोथ उत्पन्न करते हैं।

उदरीय कोटर के ग्रांतर ग्रंगों की क्षति के परिणाम गंभीर होते हैं, ग्रक्सर चोटजनित ग्रभिघात से स्थिति ग्रौर भी जटिल हो जाती है।

उदरीय कोटर के ग्रंगों की क्षति के लक्षण: पेट में जोरों का दर्द, जो चोट के बाद विकसित होता है। चोट कठोर वस्तु पर पेट के बल गिरने से लग सकती है या घूँसे ग्रथवा पैरों की टक्कर ग्रादि से भी।

ग्राहत ग्रक्सर करवट के बल लेटा हुग्रा घुटनों को पेट से सटा कर कराहता रहता है। त्वचा ग्रौर श्लेष्मल झिल्लियों का रंग फीका पड़ जाता है। उदर की ग्रग्र भित्ती कस कर तन जाती है, टटोलने पर दर्द होता है। नाड़ी की गति तेज हो जाती है, पर स्पंद क्षीण होते हैं। उदर में ग्रांतर रक्तस्राव से त्वचा में एक विशेष पीलापन (या फीकापन) ग्रा जाता है, जीभ शुष्क होती है, प्यास लगती है, जम्हाई ग्राती है, ग्राँखों के सामने ग्रंधेरा छाता है, उबकाई (मतली) ग्राती है, वमन होता है। कभी-कभी उदरस्थ ग्रंगों की क्षति ग्रौर उदर में ग्रांतर रक्तस्राव से रोगी को क्षैतिज स्थिति में तकलीफ का ग्रनुभव होता है। वह उठकर बैठने की कोशिश करता है। उसे लिटाते हैं ग्रौर वह फिर बैठने लगता है। यह ग्रवस्था उदरस्थ ग्रंगों की क्षति का विशेष लक्षण है।

यदि उदर की भित्ती पर घाव है, तो यह स्पष्ट करना महत्त्वपूर्ण होता है कि घाव उदरीय कोटर तक पहुँचा है या नहीं, आंतर अंगों को उससे क्षति पहुँची है या नहीं (अर्थात् घाव बेधक है या नहीं)।

पेट (उदर) के बेधक घाव का बिल्कुल सही लक्षण है – आँत या परितानिका के नन्हे पाश का घाव से बाहर निकल आना। अन्य स्थितियों में बेधक घाव का निदान अप्रत्यक्ष लक्षणों के आधार पर ही संभव है। इसके लिये उपरोक्त सभी लक्षणों को ध्यान में रखना पड़ता है, जो उदरस्थ अंगों की क्षति के सूचक हैं। साथ ही आर-पार घाव के प्रवेश-छिद्र और निकास-छिद्र के आकारों और उनकी स्थितियों को भी देखना चाहिये। गुर्दे या मूत्राशय में चोट आने से अक्सर रक्तरंजित मूत्र आता है।

प्राथमिक उपचार. पेट के घाव पर तुरंत निष्कीटित पट्टी डालनी चाहिये। घाव से बाहर निकले हुए आँत या परितानिका के अंशों को ठीक करने या उन्हें अंदर करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये। बाहर निकले हुए अंगों को चौड़ी पट्टी से ढकना चाहिये। यदि ऐसी पट्टी न हो तो साफ तौलिये या चादर का इस्तेमाल करना चाहिये। क्षत उदरस्थ अंगों वाले रोगी को कुछ खाने या पीने के लिये नहीं देना चाहिये। उसे स्ट्रेचर पर इस तरह लिटाते हैं कि पैर घुटनों के पास मुड़े रहें। पेट पर शीतल पुल्टिस रखते हैं और रोगी को यथाशीघ्र अस्पताल पहुँचाने की व्यवस्था करते हैं, जहां उसका निर्विलंब आपरेशन होता है।

रीढ़ की क्षतियां

रीढ़ में निम्न प्रकार की क्षतियां होती हैं: विभंजन, खसकन और आग्नेयास्त्र से उत्पन्न घाव। ये क्षतियां खतरनाक होती हैं, क्योंकि रीढ़ के प्रणाल में मेरुमज्जा होती है, विभंजित अस्थि के खिसकने से वह दब जा सकती है, बम के टुकड़ों से क्षत हो जा सकती है, पूर्णतः या अंशतः नष्ट भी हो सकती है।

मेरुमज्जा में चोट लगने पर संवेदिता (संवेदनशील-ता) लुप्त हो जाती है और धड़ के निचले भाग में लकवा हो जाता है। कूल्हे में स्थित अंगों के कार्य में गड़बड़ी हो जाती है, मलमूत्र-विसर्जन रुक जाता है। त्रिकास्थि (रीढ़ की निम्नतम अस्थि), पिछली एड़ियों और पँखुड़ों के क्षेत्रों में शैयाव्रण (चर्म-कोशिकाओं का मरण) शुरू हो जाता है, पूर्ण रक्त-सृपन होने लगता है। इन बातों से आदमी बिल्कुल अपाहिज हो जा सकता है, उसकी मृत्यु भी हो सकती है। गरदन के क्षेत्र में रीढ़ निम्न कारण से टूटती है: अनजान जलाशय में छलांग लगाने से सर जमीन अथवा किसी अन्य वस्तु से टकरा जाता है। ऐसी स्थिति में रीढ़ टूटने के साथ-साथ आदमी बेहोश हो कर डूबने लग सकता है।

प्राथमिक उपचार. आहत को उठा कर दूसरी जगह लिटाते समय यह खयाल रखना चाहिये कि क्षत कशेरुक (रीढ़ के चपटे खंड) अपनी जगह से खिसक न जायें या रीढ़ उस स्थल पर मुड़ न जाये। असावधान गति

के कारण अस्थि-खंड खिसक कर मेरुमज्जा को नयी क्षति पहुँचा सकते हैं। आहत को कठोर समतल सतह पर लिटाना चाहिये, उसे उलटने या बिठाने की कोशिश नहीं करनी चाहिये। स्ट्रेचर पर तख्ता रख कर ही उसे ढोना चाहिये। तख्ते पर दुहरा कंबल बिछाना चाहिये।

आहत को स्ट्रेचर पर रखने के लिये उसकी पीठ से तख्ता सटा कर उसे सीधा टेकते हुए उठाना चाहिये। यदि ऐसा तख्ता नहीं है, तो तीन आदमियों को मिल कर उठाना चाहिये। एक आदमी सर पकड़ता है, दूसरा पँखुड़ों के नीचे हाथ रखता है और तीसरा नितंबों और घुटनों के नीचे, ताकि रीढ़ कहीं भी मुड़े नहीं। यदि स्ट्रेचर पर बिछाने के लिये तख्ता नहीं है, तो आहत को पेट के बल लिटाना चाहिये।

यदि रीढ़ गरदन के क्षेत्र में टूटी है, तो गरदन के चारों ओर रूई और गजी की मोटी-तगड़ी पट्टी बांधी जा सकती है। यदि रूई की परत पर्याप्त मोटी होगी, तो सर झुकेगा नहीं और गरदन कुछ हद तक अचल रहेगी। पट्टी बांधते वक्त ध्यान रखते हैं कि गरदन और वक्ष दब न जाये। इसके बाद आहत को सावधानीपूर्वक अस्पताल पहुँचाते हैं।

श्रोणि-विभंजन

कूल्हे (श्रोणि) की हड्डी का टूटना गंभीर चोटों की श्रेणी में आता है। यह गतिमान यंत्रों के बीच कस कर
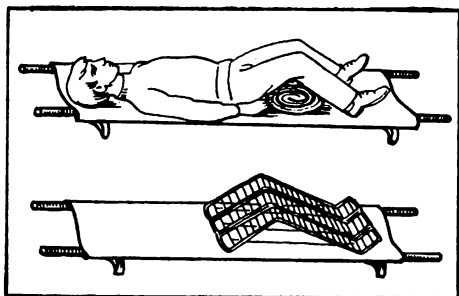
चित्र 42. कूल्हा टूटने पर आदमी को वहन करने के लिये स्ट्रेचर।

दबने, गाड़ी से धक्का लगने या ऊँचाई से गिरने के कारण होता है। कूल्हे की हड्डियों के टूटने के साथ-साथ अक्सर कूल्हे में स्थित (श्रोणिस्थ) आंतर अंगों – मूत्राशय, मूत्र-नली और आँत – को भी क्षति पहुँचती है।

विभंजन पहचानना कठिन होता है, क्योंकि कूल्हे की हड्डियां गहराई में छिपी होती हैं। इसके मुख्य लक्षण हैं: चोट की जगह पर दर्द और बैठने या पैरों पर खड़ा होने में असमर्थता। क्षैतिज स्थिति में आहत पसारे हुए पाँव को उठाने में असमर्थ होता है। जघनास्थि (जननेंद्रिय से ऊपर की हड्डी) को ऊपर से या पूरे कूल्हे को दोनों पार्श्वों से दबाने पर तेज दर्द होता है। कभी-कभी मूत्राशय या मूत्र-नली में विदार के साथ-साथ रक्त-रंजित मूत्र और मूत्र-त्याग में तकलीफ से भी श्रोणि-विभंजन का इशारा मिलता है।

टूटे कूल्हे के अस्थिखंड और भी दूर न खिसक जायें तथा उनके तीखे सिरों से आंतर अंगों को क्षति न पहुँचे, इसके लिये कूल्हे को श्रोणिफलकों (कूल्हे की हड्डी के ऊपरी विस्तृत भागों) पर तौलिये से बांध देना चाहिये। आहत को कठोर स्ट्रेचर पर दुहरा कंबल बिछा कर लिटाते हैं। स्ट्रेचर को कठोर बनाने के लिये उसके तिरपाल पर पतला तख्ता (प्लाइ वुड) बिछाते हैं (जैसा रीढ़ टूटे हुए आहत को ढोने के लिये करते हैं)। आहत को 'चित मेढ़क' की मुद्रा में लिटाते हैं (चित्र 42)। उसे पीठ के बल लिटाते हैं, पैर घुटनों पर थोड़ा मोड़ कर एक-दूसरे से कुछ दूर रखे जाते हैं। घुटनों के नीचे 25—30 सेंटीमीटर ऊँची मसनद (तकिया, बेलनाकार लपेटा हुआ कंबल या कपड़े) रखते हैं। घुटनों को एक-दूसरे से कुछ दूर रखते हैं और उनके बीच रूई की गद्दी रखते हैं। जांघ के निचले भागों और दोनों टखनों को पट्टी से बांध देते हैं, मसनद को स्ट्रेचर के साथ बांध कर जड़ देते हैं।

हाथ-पैर की क्षतियां

हाथों की एक आम क्षति है—स्कंध-संधि (कंधे के जोड़) से खसकन। इसका लक्षण यह है कि हाथ को स्वतंत्र हिलाया-डुलाया नहीं जा सकता (बाध्य स्थिति) और संधि की पर्याकृति परिवर्तित हो जाती है। हाथ
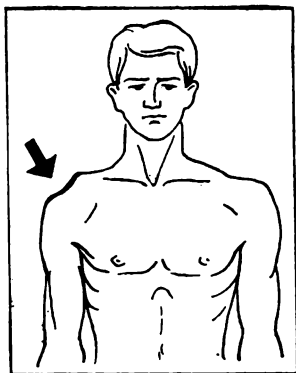
चित्र 43. दायीं बाँह की खसकन।

चित्र 44. दायीं जांघ की खसकन।

कोहनी पर कुछ मुड़ा होता है और धड़ से कुछ दूर रहता है।

स्कंध-संधि की आकृति बिगड़ने का कारण यह है कि बाँह की हड्डी की घुंडी संधि-संपुट के सापेक्ष आगे और नीचे की ओर खिसक आती है और वहां सतह धँसी हुई लगती है। संधि पर बाँह हिलाने-डुलाने की चेष्टा से तीव्र पीड़ा होती है और लगता है कि बाँह स्प्रिंग की तरह उछल रही है (चित्र 43)।

कोहनी में खसकन बहुत कम अवलोकित होती है। इसमें कफोणि-मुंड (कोहनी पर उभरी हड्डी) के बहुत अधिक पीछे उभर आने के कारण – कोहनी की आकृति स्पष्टतः अपरूपित दिखती है। कोहनी के जोड़ पर हाथ की गति बहुत सीमित तथा पीड़ादायक हो जाती है।

प्राथमिक उपचार. हाथ को रूमाल के सहारे लटका देना चाहिये और आहत को यथाशीघ्र अस्पताल ले जाना चाहिये। अविशेषज्ञ को खसकन दूर करने की चेष्टा नहीं करनी चाहिये।

जांघ की खसकन बहुत अधिक बल लगने से ही संभव है। ऊर्विका (ऊर्वस्थि, जांघ की हड्डी) का ऊपरी सिरा कुछ ऊपर खिसक आता है (चित्र 44), जिससे पैर कुछ छोटा दिखने लगता है। जिसने डाक्टरी नहीं पढ़ी है, वह सही-सही नहीं बता सकता कि यह जांघ की खसकन है या जांघ की ग्रीवा (संधि-संपुट में अँटने वाली घुंडी और जांघ के बीच के नन्हे और अपेक्षाकृत पतले भाग) में भीतरी विभंजन है। अंतिम घटना कहीं अधिक प्रेक्षित होती है। ऊर्वस्थि की ग्रीवा के विभंजन से पैर भीतर की ओर नहीं मुड़ा होता (जैसाकि खसकन से होता है), वरन् बाहर की ओर निकला और मुड़ा होता है। साथ ही कूल्हे और जांघ के जोड़ (ऊरुश्रोणिक संधि) में गति खसकन की तुलना में और भी सीमित होती है।

आहत के पैर को निश्चल बना कर उसे स्ट्रेचर पर ले जाना चाहिये।

घुटने की खसकन. यह बहुत कम होती है। इसकी पहचान है जोड़ पर संगीन जैसा अपरूपण। घुटने की कटोरी पैर के अक्ष के साथ नुकीला कोण बनाती हुई उभर आती है। मृदु ऊतकों में विदार और कुंभियों की क्षति के कारण तीव्र शोफ और आंतर रक्तस्राव भी अवलोकित होता है।

प्राथमिक उपचार. उंगलियों से जंघामूल तक खपची बांध कर आहत को अस्पताल ले जाते हैं।

हँसुली में विभंजन हँसुली (जत्रुक) में प्रत्यक्ष चोट से या पार्श्व में फैले हुए हाथ के बल गिरने से होता है। विभंजन-स्थल पर पीड़ा होती है, टुकड़ों के स्थानांतरण से अपरूपण और रक्तस्राव होता है। विभंजन-स्थल पर टटोलने से टुकड़ों का हिलना महसूस होता है और कटकट की आवाज आती है। हाथ से गति करना असंभव हो जाता है।

परिवहन के समय संबद्ध अंगों को रूई और गजी के बने छल्लों की सहायता से निश्चल बनाया जाता है। उन्हें कंधों और बाँह के जोड़ों पर पहनाया जाता है और पीछे की ओर रबड़ की नली के सहारे खींच कर रखा जाता है (चित्र 45)।

छल्ले की मुटाई पर्याप्त अधिक (5 सेंटीमीटर से कम नहीं) होनी चाहिये, ताकि कंधों पर समरूप दाब पड़े और दर्द न हो। छल्ले का आंतरिक व्यास कंधे के जोड़ के आकार से 2—3 सेंटीमीटर अधिक होना चाहिये।

अस्थायी निश्चलकरण के लिये रूमाल से 8 की आकृति
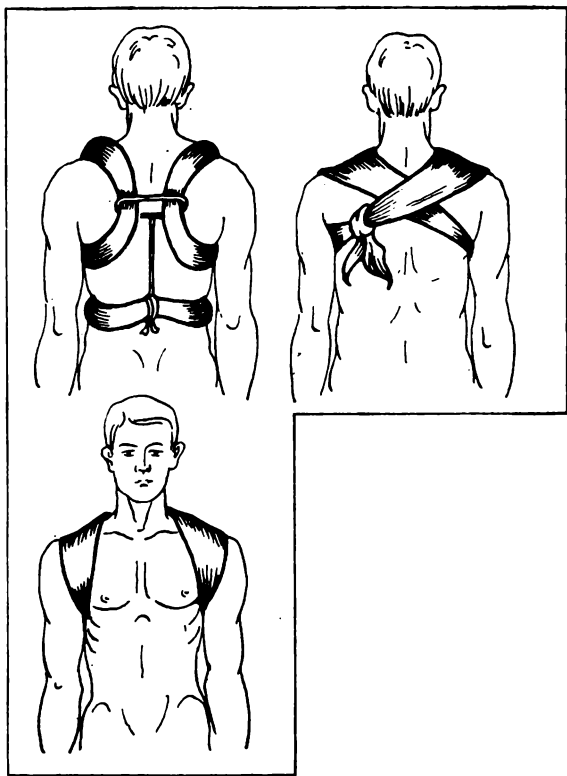
चित्र 45. हँसुली टूटने पर रूई-गजी के छल्लों और रूमाल की सहायता से निश्चलकरण।

की पट्टी का भी उपयोग हो सकता है। आहत को बैठा कर उसकी स्कंध-संधियों (कंधे के जोड़ों) को पीछे

की ओर खींचते हैं और इसी स्थिति में उन्हें रूमाल के सहारे निश्चल करते हैं। पीठ पर पँखुड़ों के बीच में रूमाल के सिरों की गाँठ के तले रूई और गजी की गद्दी रखते हैं, जिससे स्कंध-संधियां और भी पीछे खिंच आती हैं और हँसुली के टुकड़े लमड़ी अवस्था में आ जाते हैं। रूमाल या छल्लों की सहायता से निश्चल करने के बाद हाथ को रूमाल से लटका देते हैं।

विभंजित हँसुली को फ्रांसीसी करोर्जक डेजो (Desault, D. T. 1744-1795) की पट्टी से भी टेक दिया जा सकता है। आहत के कंधे को थोड़ा पीछे-नीचे खींचते हैं और काँख में सेम के बीज की आकृति वाली गद्दी रखते हैं, कोहनी को समकोण पर मोड़ते हैं। हाथ को इसी स्थिति में धड़ के साथ बांधते हैं। पहले धड़ और कंधे पर घड़ी की सूई की दिशा में चंद लपेटनें डालते हैं, फिर पट्टी को स्वस्थ पार्श्व की काँख से निकाल कर वक्ष से होते हुए रोगी कंधे पर ले जाते हैं; पीछे से उसे पँखुड़े पर नीचे कोहनी तक लाते हैं, कोहनी को पीछे से आगे की ओर लपेटते हैं। फिर पट्टी को बाँह की सामने वाली सतह से होते हुए काँख से पीठ पर लाते हैं। पीठ पर पट्टी को तिरछा नीचे से ऊपर लाते हैं और रोगी कंधे से होते हुए कंधे के अनुतीर नीचे लाते हैं; अंत में उसे कोहनी से घुमा कर पीछे पीठ पर ले जाते हैं। इस तरह की लपेटनें कई बार दुहराते हैं।

हँसुली टूटने पर अल्प काल के लिये उसे छड़ी के सहारे भी आवश्यक स्थिति में निश्चल किया जा सकता
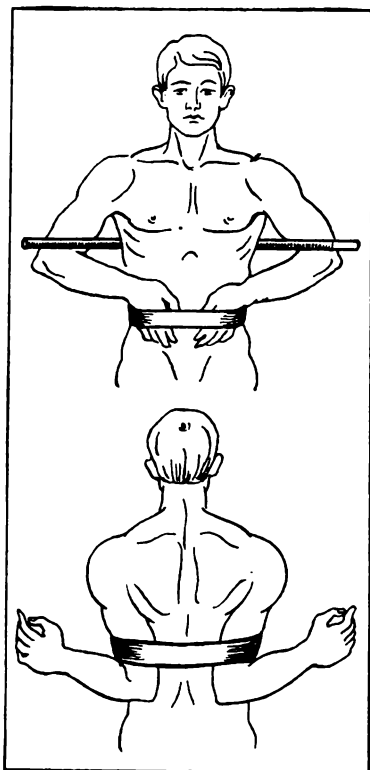
चित्र 46. हँसुली टूटने पर निश्चलकरण।

है (चित्र 46)। छड़ी को पीठ पर क्षैतिज स्थिति में रखते हैं। कोहनी पर हाथ को मोड़ कर उसे कुछ पीछे खींचते हैं और उसमें छड़ी के सिरे को फँसा कर उसी स्थिति में

रोके रखते हैं। यह सारा काम बहुत मुलायमियत के साथ बिना हड़मुठता के करना चाहिये; यह याद रखना चाहिये कि हँसुली के पीछे बड़ी-बड़ी रक्तवाही कुंभियां होती हैं, जिन्हें क्षति पहुँच सकती है।

बाँह की हड्डी का भीतरी विभंजन उसके भिन्न हिस्सों में हो सकता है। इस अवस्था में बाँह से कोई गति करना लगभग असंभव होता है, क्योंकि इससे तीव्र पीड़ा होती है।

बाँह के मध्य में विभंजन होने पर अपरूपण अधिक स्पष्ट होता है और हड्डी के टुकड़ों के अपनी जगह से खिसकने के कारण हाथ छोटा हो जाता है। विभंजन-स्थल पर बाँह फूल जाती है, वहां लचक उत्पन्न हो जाती है, अस्थि-खंडों के पारस्परिक घर्षण से कटकट की आवाज आती है। कटकटाहट है या नहीं, यह देखने के लिये हाथ को हिलाना-डुलाना नहीं चाहिये; इस तरह का प्रयत्न खतरनाक होता है और प्रतिषिद्ध (प्रतिसंकेतित) है।

प्राथमिक उपचार. यदि बाँह के विभंजन की आशंका भी हो तो खपची जरूर बांधनी चाहिये या निश्चलकारी पट्टी बांधनी चाहिये। इस स्थिति में हाथ की तीन संधियों को निश्चल करना पड़ता है – कलाई, कोहनी और कंधे के पास।

विभंजन के प्राथमिक उपचार में क्षत हड्डी के सिरों (और टुकड़ों) का निश्चलकरण ही प्रमुख है। इसके लिये खपचियों का उपयोग होता है, जिन्हें तख्तों, धातुई तार आदि सुलभ सामग्रियों से बनाया जा सकता है (तार से जालीदार या सीढ़ीनुमा खपची बन सकती है)।
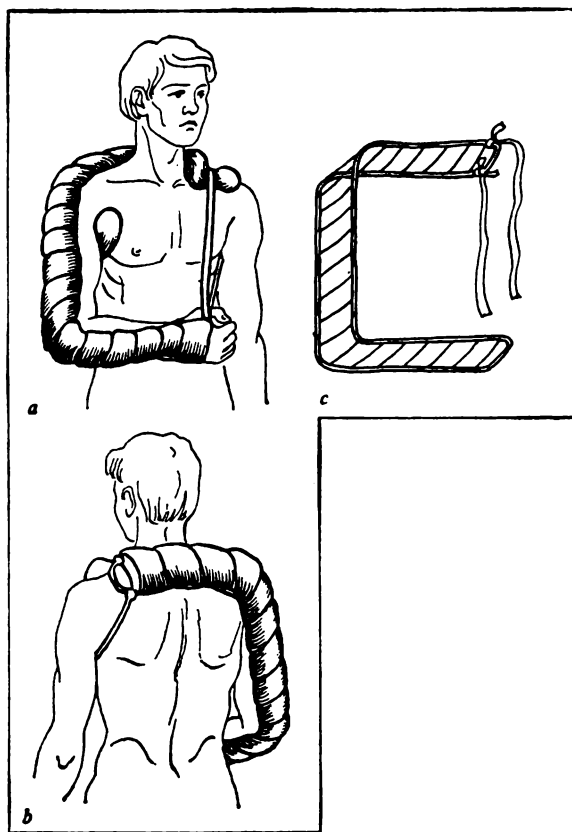
चित्र 47. बाँह टूटने पर उसे क्रामेर की खपची से नि-श्चल बनाना।

खपची इस तरह रखते हैं कि विभंजन से ऊपर और नीचे की दोनों ही संधियां निश्चल बनायी जा सकें। खपची

के नीचे जहां हड्डी की उभार हो, वहां रूई या कपड़े से बनी मुलायम गद्दी रखते हैं। खपची को रूई की एक परत से ढक कर पट्टी से लपेटते हैं, ताकि क्षत स्थल पर दाब कम पड़े; इसके बाद क्षत हाथ पर पट्टी बांधते हैं।

बाँह टूटने पर मोटे गत्ते की लंबी धारियों या झाड़ियों की पतली टहनियों का भी उपयोग किया जा सकता है। कुछ भी न मिले, तो हाथ को रूमाल के सहारे भी लटका कर उसे धड़ के साथ सटा कर पट्टी से लपेट देते हैं, लेकिन पहले काँख में रूई का ठोस गोला जरूर रख देते हैं।

बाँह टूटने पर परिवहन के लायक उसका निश्चलकरण जर्मन करोर्जक क्रामेर (F. Cramer, 1847—1903) की सीढ़ीनुमा खपची के सहारे सरल होता है (चित्र 47)। खपची को पहले स्वस्थ हाथ पर ग्राजमाते हुए ग्रावश्यक नापों पर उसे मोड़ लेते हैं। खपची पर उसके एक सिरे से उंगलियों से कोहनी तक की लंबाई नाप कर थोड़ा ग्रौर जगह रखते हुए खपची को समकोण पर मोड़ते हैं। इसी मुड़ी हुई जगह पर कोहनी ग्रायेगी; ग्रतिरिक्त स्थान कोहनी ग्रौर खपची के बीच रूई की मुलायम गद्दी के लिये छोड़ते हैं। इसके बाद बाँह की लंबाई नापते हैं ग्रौर इसमें 2—3 सेंटीमीटर की ग्रतिरिक्त लंबाई जोड़ देते हैं, क्योंकि खपची के नीचे रूई-गजी का एक मुलायम ग्रस्तर भी रहेगा। स्कंध-संधि के पास खपची को करीब 115° के कोण पर मोड़ते हैं ग्रौर उसे इस स्थल पर

अक्ष के सापेक्ष एक हल्की ऐंठन देते हैं, ताकि खपची संधि पर शरीर के साथ ठीक-ठीक सटी रहे। खपची का ऊपरी सिरा दूसरे पँखुड़े पर पहुँचना चाहिये, अतः उसे दोनों पँखुड़ों के बीच गहरे स्थल पर भी ठीक-ठीक बैठना चाहिये। खपची के उन भागों को, जो बाँह को टेक देते हैं और स्कंध-संधि पर होते हैं, नाली की आकृति देते हैं। यह खपची में सीढ़ियों की तरह लगी अनुप्रस्थ छड़ों को एक-एक कर मोड़ने से होता है। गरदन पर दाब न पड़े, इसके लिये भी एक मोड़ देते हैं।

खपची को टेबुल की किनारी पर टेक कर मोड़ना सुविधाजनक होता है। खपची तैयार हो जाने के बाद बाँह को धड़ से थोड़ा दूर करते हैं और काँख में सेम के बीज की आकृति की एक गद्दी रखते हैं। गद्दी रूई और गजी से बनाते हैं; इसका आकार 15 × 10 × 5 सेंटी-मीटर रखते हैं। तैयार खपची पर रूई की परत रखते हैं और उसे पट्टी लपेट कर बांध देते हैं (यदि खपची पर गद्दी पहले से नहीं लगी है)। कोहनी पर समकोण मुड़े हाथ पर खपची रखते हैं। पीठ पर स्थित सिरे के कोनों पर पहले से ही दो फीते बांध लेते हैं। आगे वाले फीते को स्वस्थ कंधे के ऊपर से सामने की ओर नीचे लाते हैं और खपची के निचले सिरे के सामने वाले कोने से बांध देते हैं। पिछले फीते को काँख के नीचे से सामने लाते हैं और खपची के निचले सिरे के पश्च (पीछे के) कोने से बांधते हैं। गरदन और कंधे को रूई की गद्दी से ढकते हैं, जिससे खपची का दाब न पड़े। फीते को

चित्र 48. बाँह टूटने पर उसे निश्चल बनाना।
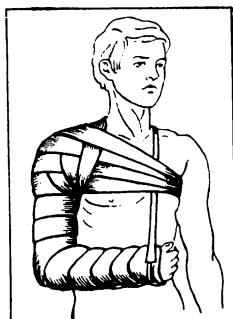
इतना कस कर खींचना चाहिये कि हाथ कोहनी के पास समकोण पर मुड़ी हुई अवस्था में टिका रहे।

खपची को प्रबाहु (कलाई से कोहनी तक के हिस्से) के साथ सटा कर पट्टी लपेटते हैं। यह काम कलाई के पास से शुरू करते हैं। खपची स्कंध-संधि के पास कस कर बंधी होनी चाहिये। इस क्षेत्र में 8 के आकार की लपेटनें उपयुक्त होती हैं; पट्टी को स्वस्थ पार्श्व की काँख से गुजारते हैं। खपची के ऊपरी भाग को इस प्रकार स्थिर करना चाहिये कि वह आहत के पश्चकपाल पर न खिसक आये। इसके लिये लपेटनें कंधे से आगे की ओर और अनिवार्यतः धड़ के गिर्द डाली जाती हैं (चित्र 48)।

प्रबाहु-विभंजन. प्रबाहु (कलाई से कोहनी तक का भाग) दो लंबी समांतर हड्डियों से बनी होती है। एक को कफोणिक अस्थि या कफोणिका कहते हैं (जो कनिष्ठा की ओर होती है; कफोणि का अर्थ कोहनी है) और दूसरी को रश्मिक अस्थि या रश्मिका कहते हैं (जो अंगूठे की
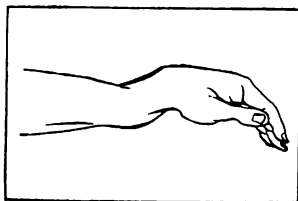
चित्र 49. रश्मिका के टूटने पर प्रबाहु का अपरूपण।

ओर होती है)। इनमें तरह-तरह के विभंजन संभव हैं। किसी एक में (अकेले) विभंजन हो सकता है या एक साथ दोनों में–एक ही जगह या अलग-अलग। अधिकांशतः कलाई के पास रश्मिका में विभंजन होता है, विशेषकर ड्राइवरों के हाथ में, जब वे छड़ से इंजन चालू करते हैं (जवाबी धक्के के कारण)। ऐसी क्षति से बचने के लिये मूठ को इस तरह पकड़ना चाहिये कि अंगूठा समेत सभी उंगलियां एक ही तरफ रहें।

रश्मिका में इस सामान्य विभंजन के लक्षण निम्न हैं: रश्मिका के निचले भाग में दर्द, अस्थि-खंडों के खिसकने से प्रबाहु में संगीन की आकृति जैसा अपरूपण (चित्र 49)।

प्रबाहु टूटने पर दो संधियों को निश्चल बनाना पड़ता है–कोहनी पर और कलाई पर। बाँह में विभंजन की तरह इसमें भी क्रामेर की खपची का उपयोग अच्छा रहता है। क्षत हाथ को कोहनी पर समकोण बनाते हुए मोड़ कर रखना चाहिये और प्रबाहु को इस तरह घुमा लेना चाहिये कि हथेली धड़ की ओर रहे। क्रामेर की

खपची को समकोण पर ऐसी जगह मोड़ते हैं कि उसमें प्रबाहु और हस्तपुच्छ आसानी से अँट जाये। खपची की अनुप्रस्थ छड़ों को मोड़-मोड़ कर उसे नाली की शक्ल दे देते हैं, जिससे प्रबाहु सही स्थिति में स्थिर रहे, हथेली धड़ की ओर मुड़ी रहे। हथेली के नीचे रूई का काफी मोटा गोला रखते हैं, जिसे पट्टी से हथेली के साथ लपेट देते हैं। खपची उंगलियों के सिरों से ले कर बाँह के दो-तिहाई भाग तक रखते हैं। उसे पट्टियों से लपेट देते हैं और हाथ को रूमाल से लटका देते हैं। यदि तार की बनी ऐसी खपची न हो, तो प्लाई वुड (पतली तख्ती) या मोटे गत्ते से काम चलाना चाहिये। पानी में भिगा कर गत्ते को बाँह और प्रबाहु की आकृति के अनुसार मोड़ा जा सकता है; फिर उसे पट्टी से लपेट कर स्थिर कर देते हैं।

सामान्य स्थल पर रश्मिका के टूटने पर प्रबाहु को तख्ती से बनी खपची के सहारे उंगलियों से कोहनी तक निश्चल बना लेना काफी रहता है। हस्तपुच्छ और कलाई को सामान्य शरीरलोचनी स्थिति (सहज, स्वाभाविक स्थिति) प्रदान की जाती है, हथेली तले रूई की गद्दी रखते हैं।

हस्तपुच्छ में विभंजन. हस्तपुच्छ (कलाई से नीचे, उंगलियों के सिरों तक के हिस्से) की हड्डियां टूटने पर उन्हें भी निश्चल बनाना पड़ता है। इसमें यह याद रखना पड़ता है कि हथेली कितने भिन्न और कितने महत्त्वपूर्ण कार्य संपन्न करती है। विश्राम की स्थिति में कलाई पर

हथेली थोड़ा पीछे मुड़ी रहती है और उंगलियां आधी मुड़ी हुई स्थिति में रहती हैं। अंगूठा थोड़ा दूर रहता है और बाकी उंगलियों के सामने पड़ता है, जिससे हथेली वस्तुओं को पकड़ने में समर्थ होती है। हस्तपुच्छ को निश्चल करते वक्त अंगूठे और उंगलियों की इस सुविधा-जनक स्थिति को सुरक्षित रखना चाहिये।

जांघ में विभंजन. जांघ की हड्डी (ऊर्विका) मानव-शरीर में सबसे बड़ी हड्डी है। वह चारों ओर से पेशियों की मोटी परत से ढकी होती है जिसमें बड़ी-बड़ी रक्तवाही कुंभियां तथा नर्व होते हैं। जांघ की हड्डी टूटने पर विभं-जन-स्थल के गिर्द मृदूतक (मुलायम ऊतक) भी क्षत हो जाते हैं।

कुंभियों के क्षत होने से काफी रक्तस्राव होता है। पेशियों में विदार से बने कोटरों में रक्त जमा हो जाता
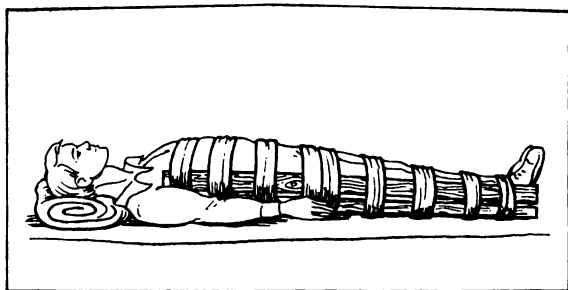
चित्र 50. जांघ टूटने पर उसे तख्तियों की सहायता से निश्चल बनाना।

है। ग्रांतरिक रक्तस्राव ग्रौर क्षत नर्व-सिराग्रों में शक्ति-शाली क्षोभ के कारण शरीर में चोट के प्रति एक ग्रापाद-मस्तक रोगी प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है – ग्रभिघात (दे. पृ. 33)।

जांघ काफी बड़े यांत्रिक बलों के प्रभाव से ही टूटती है, जैसे गाड़ी से कुचलने पर, बहुत ऊँचाई से गिरने पर या किसी कठोर तथा भारी वस्तु से पैर पर चोट के कारण (चित्र 50)।

ग्राहत को विभंजन-स्थल पर तीव्र पीड़ा होती है, वह पैर पर खड़ा नहीं हो पाता। विभंजन-स्थल पर ग्रस्थि की वक्रता (टेढ़ापन), नम्यता ग्रौर ग्रस्थि-खंडों के रगड़ने से उत्पन्न कटकट की ग्रावाज प्रेक्षित होती है। ग्रस्थि-खंड जिस प्रकार एक-दूसरे के सापेक्ष खिसकते हैं उसके ग्रनुसार जांघ टेढ़ी व छोटी हो जाती है।

प्राथमिक उपचार. ग्राहत को वेदनाहर दवा देनी चाहिये ग्रौर पैर को निश्चल बनाना चाहिये। निश्चलकरण ग्रत्यंत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इससे मृदू ऊतकों की क्षति बहुत हद तक रुक जाती है ग्रौर परिवहन के समय गंभीर जटिलताग्रों के विकास का खतरा कम हो जाता है। ग्रक्सर प्रेक्षित होने वाली जटिलता है – चोटजनित ग्रभिघात।

सही निश्चलकरण से ग्रधिकांशतः कुंभियों का संपीडन दूर हो जाता है ग्रौर क्षत स्थल पर रक्त-संचार सुधर जाता है, जिससे पैठन के विरुद्ध क्षत ऊतकों की प्रति-रोधिता बढ़ जाती है। विश्राम की निश्चल स्थिति से क्षत

कुंभियों का मुंह बंद रखने वाले रक्त के थक्के सुरक्षित रहते हैं, जिससे दुबारा रक्तस्राव नहीं हो पाता।

टूटी जांघ को निश्चल बनाने के लिये सुलभ सामग्रियों से ही काम चलाना पड़ता है।

दो खपचियां बनाते हैं: आंतरिक – जंघामूल से तलवे तक लंबी; बाह्य – काँख से तलवे तक लंबी। दोनों को पैर तथा धड़ के साथ बेल्ट, फाड़े हुए कपड़े की पट्टियों आदि की सहायता से बांधते हैं।

यदि खपची बनाने के लिये कोई भी सामग्री नहीं मिले, तो टूटे पैर को स्वस्थ पैर के साथ ही बांध कर काम चलाते हैं।

टांग में विभंजन (टंग-विभंजन). टांग (घुटने और टखने के बीच के भाग) में भी दो लंबी समांतर हड्डियाँ होती हैं: मोटी – बड़ी टंगास्थि (अंगूठे की ओर); पतली – छोटी टंगास्थि (कानी उंगली की ओर)। टांग के मध्य में या निचले तिहाई भाग में दोनों हड्डियों का टूटना बहुत खतरनाक होता है। इन स्थलों पर सिर्फ बड़ी टंगास्थि का टूटना भी कम खतरनाक नहीं होता।

गुल्फों (पिछली एड़ी से ऊपर टखने के दोनों पार्श्वों पर उभरी हुई गोल हड्डियों) में पृथक विभंजन सबसे हल्के माने जाते हैं।

टंगास्थियों के बिचले भाग पर टूटने के लक्षण: तीव्र पीड़ा, टांग का अपरूपण, विभंजन-स्थल पर टांग का मोटा और टेढ़ा हो जाना, वहां उसका हिलना-डुलना और कटकट की आवाज करना। बड़ी टंगास्थि की अग्र

(सामने की) सतह छूकर अक्सर किसी एक अस्थि-खंड का उभार महसूस किया जा सकता है।

अकेली बड़ी टंगास्थि के टूटने पर भी ये ही लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं; सिर्फ अपरूपण कम होता है, क्योंकि साबुत छोटी टंगास्थि कुछ हद तक 'आंतरिक खपची' का काम करती है और टूटी हुई बड़ी टंगास्थि के टुकड़ों के इधर-उधर खिसकने में बाधक होती है। बड़ी टंगास्थि सामने से सिर्फ त्वचा द्वारा ढकी होती है, जो टूटी हड्डी के नुकीले सिरों से सरलतापूर्वक बिंध जाती है। इस स्थिति में बाहरी (खुला) विभंजन प्राप्त होता है।

गुल्फों में विभंजन से बाहरी या भीतरी गुल्फ के क्षेत्र में दर्द, फुलाव तथा रक्तस्राव उत्पन्न होता है; टांग और गोड़ की संधि (टखने) पर गोड़ को घुमाने से वह सीमित अंश तक ही गति कर पाता है, पैर पर खड़ा नहीं हुआ जाता।

प्राथमिक उपचार. खपची बांधते हैं और वेदनाहर दवा देते हैं।

तल्विकाओं में विभंजन. तल्विकाओं (तलवे के ऊपर स्थित, अर्थात् पिछली एड़ी और उंगलियों को मिलाने वाली लंबी हड्डियों) में विभंजन गोड़ पर भारी वस्तु के गिरने या गाड़ी के चक्के से कुचलने आदि कारणों से होता है।

विभंजन के लक्षण: गोड़ के ऊपरी भाग में पीड़ा, शोफ व रक्तस्राव की तीव्र वृद्धि, उंगलियों पर खड़ा होने में असमर्थता।

प्राथमिक उपचार. टखने श्रौर गोड़ को निश्चल करते हैं। यदि गोड़ को निश्चल करने के लिये कोई सही वस्तु न मिले, तो एक बड़े रूमाल से काम चला सकते हैं।

ऊरु-श्रोणिक, घुटने, कंधे, कोहनी श्रादि जैसी **बड़ी श्रस्थि-संधियों में घाव** होना गंभीर चोटों में श्राता है। इससे श्रादमी श्रपाहिज हो जा सकता है, उसकी जान भी जा सकती है। संधि की सतह पर विस्तृत क्षति जब पैठन के कारण जटिल हो जाती है, तो स्थिति बहुत गंभीर हो जाती है।

संधियों के घायल होने के लक्षण हैं: गति करते वक्त दर्द होना, उन पर फुलाव, उनकी पर्याकृति का चिकना होना, उनके सापेक्ष गति का सीमित होना।

प्राथमिक उपचार. घाव पर निष्कीटित पट्टी बांधनी चाहिये, वेदनाहर दवा देनी चाहिये श्रौर संधि को श्रच्छी तरह निश्चल कर देना चाहिये।

विद्युघात

विद्युघात ('करेंट लगना') शरीर पर उच्च वोल्टता की वैद्युत धारा या वातावरणीय विद्युत (तड़ित) के प्रभाव से उत्पन्न होता है। वैद्युत धारा शरीर में सामान्य गड़बड़ियां उत्पन्न करती है, यथा: केंद्रीय नर्व-तंत्र, हृत्कुंभी-तंत्र, श्वसन-तंत्र श्रादि के कार्यों में गड़बड़ियां। हृत्पेशी तथा महाप्राचीरा में श्रपतान या स्पाज्म (श्राकस्मिक

उच्च तानता के कारण ऐंठन के साथ देर तक टिका रहने वाला संकोचन) उत्पन्न होता है, अस्थि-पंजर से जुड़ी पेशियों में वितान (विलक्षण तान; झटकों के साथ रह-रह कर होने वाला संकोचन; हुकहुकी) होने लगता है, चेतना का लोप हो जाता है।

शरीर के ऊतकों से हो कर प्रवाहित विद्युत-धारा ताप उत्पन्न करती है, जिससे गंभीर झुलसन हो जाती है; यह धारा के प्रवेश तथा निकास के स्थलों पर विशेष स्पष्ट दिखता है। त्वचा पर 'करेंट बहने' का चिन्ह दिखता है, जो आकाशीय बिजली (तड़ित) के गिरने के चित्र जैसा होता है। वैद्युत धारा अपने तापीय, प्रकाशीय और यांत्रिक प्रभावों के कारण ऊतकों को गहरी तथा विस्तृत क्षति पहुँचाती है।

विद्युघात के साथ अक्सर अभिघात भी उत्पन्न होता है; हृदय, श्वसन-तंत्र और मस्तिष्क के प्राथमिक लकवा के कारण मृत्यु भी संभव है।

विद्युघात से मिथ्या मृत्यु की अवस्था विकसित हो सकती है, जिसमें जीवनावश्यक अंगों के कार्य गड़बड़ा जाते हैं, अत्यंत क्षीण हो जाते हैं और इसीलिये जीवन का कोई लक्षण दृष्टिगोचर नहीं हो पाता। भीगे वस्त्र और जूते, गीले हाथ आदि आदमी पर वैद्युत धारा के प्रभाव को और अधिक बढ़ा देते हैं, क्योंकि इनसे विद्यु-चालकता बढ़ जाती है। ऐसी परिस्थितियों में 220 वोल्ट की धारा भी गंभीर क्षति पहुँचा सकती है।

प्राथमिक उपचार. यदि आहत अब भी करेंट के

प्रभाव में है, उसके ऊपर नंगा तार पड़ा हुआ है या वह अँकड़े हाथों में नंगा तार पकड़े हुए है, तो सबसे पहले फुर्ती से लाइन काटनी चाहिये – स्विच ऑफ करना चाहिये, प्लग या फ्यूज निकाल देना चाहिये, या किसी सूखी कुचालक वस्तु से तार को हटाना चाहिये। उपचारकर्ता को सूखे तख्ते या रबड़ की सूखी चटाई जैसी कुचालक वस्तु पर खड़ा होना चाहिये।

आहत को करेंट से सुरक्षित कर लेने के बाद तुरंत कृत्रिम श्वसन शुरू करना चाहिये; आवश्यकता हो तो हृदय की बाह्य मालिश भी करनी चाहिये। ये सभी संजीवक उपाय (दे. पृ 118) धीरज के साथ बहुत देर तक करने चाहिये।

मृत्यु के सिर्फ अति स्पष्ट लक्षण, जैसे शव-चित्तियों की उत्पत्ति, अँकड़न आदि ही बता सकते हैं कि संजीवन-क्रिया से कोई आशा नहीं की जा सकती।

जब आहत होश में आये, उसे ढेर सारा पेय देना चाहिये, दग्ध स्थलों पर निस्सृपक पट्टी बांधनी चाहिये, आहत को स्ट्रेचर पर लिटा कर कंबल उढ़ाना चाहिये और चिकित्सा-प्रतिष्ठान ले जाना चाहिये।

झुलसन

झुलसन ताप या दाहक द्रवों (अम्ल और क्षार) से स्पर्श के कारण उत्पन्न होती है। हेतुलोचन (रोग-कारण-विज्ञान; हेतु – कारण, लोचन – देखना) के अनुसार

झुलसन तापीय, रसायनिक या विकिरणी होती है।

तापीय झुलसन लपट, खौलते पानी, उत्तप्त धातु, गर्म द्रवित प्लास्टिक, रबड़, ग्रासफाल्ट, कोलतार ग्रादि से उत्पन्न होती है।

वैद्युत झुलसन उच्च वोल्टता की धारा वहन करने वाले नंगे तार को स्पर्श करने से उत्पन्न होती है।

रसायनिक झुलसन दाहक द्रवों, ग्रम्लों व क्षारों के सांद्रित घोलों से उत्पन्न होती है; ग्रायडीन, पोटासियम परमैंगनेट, फोस्फोरस ग्रादि भी झुलसन उत्पन्न करते हैं।

तापीय झुलसन में सबसे पहले त्वचा की क्षति होती है। क्षति की कोटि उच्च तापक्रम के साथ संपर्क के प्रकार ग्रौर समय पर निर्भर करती है। ग्रादमी के ऊतक लगभग 45°C का ताप सहन कर सकते हैं। ऊतकों की गहराई में ताप के पहुँचने में चमड़ी बाधक होती है, ग्रतः शरीर के विभिन्न क्षेत्रों में चमड़ी की भिन्न मुटाई के कारण बहुत फर्क पड़ता है: चेहरे ग्रौर हथेली की चमड़ी पतली होती है ग्रतः ऊतक गहराई तक झुलस जाते हैं; पीठ ग्रौर कंधे पर कम झुलसन होती है।

झुलसन सतही होती है या गहरी। सतही झुलसन में चमड़ी की सिर्फ ऊपरी परतें क्षत होती हैं इसकी पनपने वाली परत ग्रौर इसे पनपाने वाले तत्त्व बचे रहते हैं।

गहरी झुलसन में उपकला (पपड़ी) के पनपने के सभी स्रोत मृत हो जाते हैं ग्रौर 5 से 7 सेंटीमीटर व्यास

वाले घाव पर उपकला नहीं पनप सकती। इस स्थिति में त्वचारोपण करना पड़ता है

सोवियत संघ में झुलसन की चार कोटियां निर्धारित की गयी हैं (अन्य देशों में छे कोटियां मानी जाती हैं)।

प्रथम कोटि की झुलसन में उपकला-कोशिकाओं से बनी ऊपरी चर्म-परत को हल्की क्षति होती है। त्वचा लाल हो जाती है, सूजन और दर्द होता है। ये लक्षण दो-तीन दिन में बिना किसी इलाज के लुप्त हो जाते हैं और झुलसन का कोई चिन्ह नहीं रह जाता। सिर्फ हल्की खुजली और निशल्कन (चोंइया उधड़ना) रह जाता है।

दूसरी कोटि की झुलसन में लाल त्वचा पर पीले द्रव से भरे फोड़े निकल आते हैं। फोड़े झुलसन के तुरंत बाद भी निकल सकते हैं या थोड़ा रुक कर भी। यदि फोड़ा फूट जाता है, तो चमकीले लाल तली वाला दर्दनाक घाव बन जाता है।

यदि झुलसन अपैठित रहे, तो फोड़े का द्रव चार-पाँच दिनों में अपचोषित हो जाता है या फोड़ा फूट कर सूख जाता है। चमड़ी की ऊपरी परत – अधिचर्म – आसानी से उग आती है, जलने का निशान नहीं रहता।

तीसरी कोटि की झुलसन में क्षति गहरी होती है, ऊतक स्पष्टतः मृत हो जाते हैं, साथ-साथ खुरंड (खट्टी) पड़ जाता है, जिसका रंग हल्के भूरे से काला तक हो सकता है।

सोवियत संघ में तीसरी कोटि की झुलसन को III-A तथा III-B कोटियों में बाँटते हैं। इसका एक सैद्धांतिक

महत्त्व है क्योंकि III-A कोटि की झुलसन में चमड़ी के उपकलीय तत्त्व सुरक्षित रहते हैं और घाव बिना निशान छोड़े स्वयं भर जाये इसके लिये निर्माण-स्रोत का काम करते हैं। III-B कोटि की झुलसन में चमड़ी की सभी परतें पूर्णतया मृत हो जाती हैं; घाव भरता है, लेकिन निशान बना रहता है।

झुलसन बहुत विस्तृत होने पर घाव अपने आप नहीं भरता, प्लास्टिक आपरेशन द्वारा चर्मारोपण करना पड़ता है।

चौथी कोटि की झुलसन में चमड़ी कोयला हो जाती है, गहराई में स्थित ऊतक – अधोत्वक वसीय ऊतक, पेशियां और हड्डियां – भी क्षत होती हैं।

इस प्रकार, I-III-A कोटि की झुलसन सतही होती है और III-B — IV कोटि की झुलसन गहरी होती है।

सतही झुलसन शरीर की आधी से अधिक सतह में होने पर भी शरीर में कोई गंभीर सार्विक गड़बड़ी नहीं उत्पन्न होती। गहरी झुलसन शरीर की 10 या 15 प्रतिशत सतह में भी गंभीर जटिलताओं का खतरा उत्पन्न करती है, यहां तक कि झुलसन-क्लेश भी विकसित कर सकती है। अंतिम की चिकित्सा कठिन होती है, क्योंकि शरीर के सभी अंग एवं तंत्र उसकी चपेट में आ जाते हैं।

झुलसन-क्लेश के कई चरण हैं। प्रथम आरंभिक चरण झुलसनजनित अभिघात है। यह एक या दो दिन तक बना रहता है, इसका तल्पिक चित्र स्पष्ट नहीं होता और इसके लक्षण इने-गिने ही हैं: सामान्य कमजोरी, लस्ती

(लस्त होना, सुस्ती), दमन (शरीरक्रियाओं का दमन), तेज नाड़ी (विशेष गंभीर अवस्था में रक्तदाब घट जाता है, मूत्रस्राव बहुत कम हो जाता है, मूत्र का रंग गाढ़ा और गंध चिरायंध जैसी होती है। झुलसनजनित अभिघात विकसित होगा या नहीं, इसका अंदाज कुछ हद तक झुलसन की कोटि और उसके विस्तार से लगाया जा सकता है।

झुलसन का विस्तार शीघ्र निर्धारित करने के लिये दो सरल नियम हैं: नौ का नियम और हथेली का नियम। किसी एक की सहायता ली जा सकती है।

नौ का नियम : सर, चेहरे और गले की कुल सतह पूरे शरीर की कुल सतह का 9 प्रतिशत अंश है। प्रत्येक हाथ की सतह शरीर की कुल सतह का 9 प्रतिशत है। प्रत्येक पैर की सतह शरीर की कुल सतह के 9 प्रतिशत की दुगुनी (अठारह प्रतिशत है)। धड़ के सामने की सतह शरीर की सतह के 9 प्रतिशत की दुगुनी है। धड़ के पीछे की सतह भी शरीर की सतह के 9 प्रतिशत की दुगुनी है। मूलाधार-क्षेत्र की सतह शरीर की सतह का 1 प्रतिशत है।

इन आँकड़ों की सहायता से झुलसन के विस्तार का सन्निकट मूल्यांकन शीघ्र किया जा सकता है।

हथेली का नियम : हथेली की सतह शरीर की सतह का 1 प्रतिशत है, अत: शरीर के क्षत क्षेत्र को हथेली से नापते हुए उसका आकार निर्धारित किया जा सकता है।

प्राथमिक उपचार. सबसे पहले क्षतिकारक घटकों

(लपट, गर्म पानी, वाष्प, करेंट, दाहक द्रव, पिघला हुआ प्लास्टिक, कोलतार आदि) को यथाशीघ्र दूर करना चाहिये।

यदि आदमी के वस्त्र जल रहे हैं, तो उसे दौड़ना नहीं चाहिये, क्योंकि इससे हवा आग को और भी तेज कर देती है। इसके अतिरिक्त उदग्र खड़ी स्थिति में आग ऊपर सर की ओर फैलने लगती है, जिससे चेहरा और बाल क्षत होते हैं; गर्म धुएं और चिरायंध से भरी हवा साँस के साथ खिंच कर साँसनली को नुकसान पहुँचाती है। इन खतरों से बचने के लिये आदमी को पीठ के बल लेट जाना चाहिये और वस्त्र उतार फेंकने की चेष्टा करनी चाहिये या हाथ से मार-मार कर लपट बुझाने की कोशिश करनी चाहिये। उसे या बचाने वाले को चाहिये कि वह जलते भाग को कंबल, ओवरकोट, त्रिपाल, बालू, भुरभुरी मिट्टी या बर्फ से अच्छी तरह ढक दे ताकि आग को हवा मिलनी बंद हो जाये। यदि ऐसा संभव नहीं है, तो जलते भाग को जमीन के साथ दबा कर आग बुझाने का प्रयत्न करना चाहिये।

झुलसी त्वचा के साथ चिपके वस्त्र को उखाड़ना नहीं चाहिये, उसे चारों तरफ से काट लेना चाहिये। बाकी कपड़ों को छोड़ा जा सकता है, यदि वे भीगे नहीं हों या सुलग नहीं रहे हों।

झुलसे क्षेत्र को निस्सृपक पट्टी से ढक देते हैं।

आश्चर्य की बात है कि दैनंदिन जीवन में लोग आज भी जलने पर अत्यंत अनुपयुक्त विधियों का उपयोग

करते हैं, जैसे: झुलसे हुए स्थान पर तेल लेपना, पाउडर या आरारोट छिड़कना, मूत्र, फेनाइल या एनीलीन लगाना, आदि।

संजीवन-विधियों (हृदय की मालिश, कृत्रिम साँस) का उपयोग विशेष संकेतों की उपस्थिति में ही करना चाहिये।

जब हृदय और साँस रुकने लगे, जल्द से जल्द झुलसन-क्षेत्र निर्धारित करना चाहिये और देखना चाहिये कि कोई आनुषंगिक चोट तो नहीं है।

संजीवन का उपयोग तभी किया जाता है, जब झुलसन का क्षेत्र छोटा होता है, अर्थात् जब हृदय के रुकने का कारण झुलसन की गंभीरता नहीं, बल्कि करेंट या कोई अन्य आनुषंगिक यांत्रिक चोट होता है।

दर्द दूर करने के लिये और ऊतकों की गहराई में झुलसन रोकने के लिये दग्ध सतह को ठंडे पानी की धारा में या बर्फीले पानी से गीले तौलिये द्वारा 15 से 20 मिनट तक ठंडा करना चाहिये।

यदि शरीर की 15—20 प्रतिशत से अधिक सतह झुलसी हुई है, तो अधिक ठंडा करना खतरनाक होता है, क्योंकि इससे हृदय के निलयों (निचले, रक्तक्षेपक कक्षों) का स्फुरण (अनियमित फरकन) शुरू हो जाता है। झुलसी हुई सतह को सूखी निष्कीटित पट्टी से ढकना चाहिये। यदि झुलसन विस्तृत है, तो उसे सिर्फ साफ चादर से लपेट देना चाहिये। चेहरे की क्षत त्वचा पर वैजेलीन का तेल (पेट्रोलियम जेली) लेपना चाहिये और

उसे ढकना नहीं चाहिये। यदि संभव हो तो वेदनाहर दवा (प्रोमेडोल) की एक अधोत्वक (चमड़ी के नीचे) सूई लगा देनी चाहिये। यदि मौसम ठंडा है, तो आहत के शरीर को गर्म रखने का यत्न करना चाहिये।

प्यासे आहत को नमक और क्षार का घोल पीने के लिये देना चाहिये— एक लीटर पानी में चाय की चम्मच से एक चम्मच नमक और एक चम्मच खाद्य सोडा।

अम्ल या क्षार जैसे दाहक द्रव से दग्ध सतह को, विशेषकर आँख को, ढेर पानी से धोना चाहिये।

आहत को ढोने का प्रश्न दुर्घटना-स्थल पर ही हल किया जाता है। 10 प्रतिशत तक की सतही झुलसन वाला आहत बिना किसी सहायता के चल-फिर सकता है। उसे अस्पताल में चिकित्सा की आवश्यकता नहीं पड़ती, उसे नजदीक के किसी दवाखाना में या किसी डाक्टर से दिखा लेना पर्याप्त रहता है।

अस्पताल में चिकित्सा की आवश्यकता के निम्न संकेत हैं :

(1) प्रथम व द्वितीय कोटि की झुलसन—शरीर के 10 प्रतिशत से अधिक सतह पर; गहरी झुलसन;

(2) श्वसन-अंगों, चेहरे और गले की झुलसन;

(3) कार्य और सौंदर्य दोनों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण अंगों, जैसे हाथ, पैर, बड़ी संधियों, मूलाधार-क्षेत्र की झुलसन;

(4) झुलसन के साथ अन्य चोट; पहले से हृदय व रक्तवाही कुंभियों, फेफड़े, यकृत, वृक्क आदि की कोई बीमारी।

तुषारण

तुषारण लंबे समय तक ठंड में अनावृत रहने से होता है। शरीर के परिसरीय अंगों, जैसे हाथ-पैर की उंगलियों, नाक, कानों और गालों की ठंड में ठीक से हिफाजत नहीं हो पाती, अतः उनके तुषारित होने की संभावना अधिक रहती है।

कोई जरूरी नहीं है कि तुषारण बर्फीली ठंड में ही हो, वह 0°C पर तेज, ठंडी और आर्द्र हवा में भी संभव है। कसे हुए गीले जूते यदि लंबे समय तक उतारे न जायें, तो पैरों के तुषारण का खतरा रहता है।

तुषारण के प्रति प्रवणता बढ़ाने वाले घटक निम्न हैं: रक्तहानि, फाका, अविटामिनता, हृत्कुंभिक रोग आदि के कारण शरीर में सामान्य कमजोरी और क्लांति। ठंड का प्रभाव जारी रहने पर रक्तवाही कुंभियां पहले फैलती हैं, फिर सिकुड़ने लगती हैं, जिससे ऊतकों के पोषण में गड़बड़ी होने लगती है। फलस्वरूप ऊतक अंशतः या पूर्णतः मृत हो जा सकते हैं। इन परिवर्तनों की गंभीरता के आधार पर **तुषारण की चार कोटियां** मानी गयी हैं।

प्रथम कोटि के तुषारण का लक्षण रक्तसंचार में उत्क्रमणीय (वापस स्वतः ठीक होने वाली) गड़बड़ी के रूप में उत्पन्न चमड़ी की क्षति है। त्वचा पीली और असंवेदनशील हो जाती है। गरमाहट देने पर वह नीली-लाल, पीड़ादायक और शोफित हो जाती है। कभी-कभी निशल्कन भी होने लगता है। सभी रोगात्मक लक्षण

कुछ दिनों में गायब हो जाते हैं, पर तुषारित अंग ठंड के प्रति लंबे समय के लिये संवेदनशील बना रहता है।

दूसरी कोटि के तुषारण में क्षतिग्रस्त क्षेत्र पर लाल-नीली त्वचा की पृष्ठभूमि पर फोड़े उत्पन्न हो जाते हैं, जिनमें अपारदर्शक द्रव भरा होता है।

तीसरी कोटि के तुषारण में चमड़ी अपनी पूरी गहराई तक मृत हो जाती है। क्षत ऊतक छूने में कड़े लगते हैं।

चौथी कोटि के तुषारण में सभी मृदु ऊतक और अस्थियां क्षतिग्रस्त होती हैं। मृत ऊतक धीरे-धीरे अलग हो जाते हैं और थूथ बहुत लंबे समय तक ठीक होता रहता है; निशान रह जाते हैं।

प्राथमिक उपचार. तुषारित अंग को पानी से भरे टब में एक घंटे के दौरान धीरे-धीरे गर्म करते हैं— पानी का तापक्रम 20 से 40°C तक बढ़ाते हुए। साथ-साथ क्षतिग्रस्त क्षेत्र पर परिसर से केंद्र की दिशा में मालिश भी करते जाते हैं। मालिश तबतक किया जाता है, जबतक त्वचा लाल और गर्म न हो जाये। यदि गर्म पानी के टब की व्यवस्था न हो सके, तो क्षतिग्रस्त क्षेत्र पर पहले स्पीरिट में भीगी रूई से रगड़ना चाहिये, फिर फ्लानेल के साफ व सूखे कपड़े से।

बर्फ नहीं रगड़ना चाहिये, त्वचा पर गंदे हाथों से मालिश नहीं करनी चाहिये। तुषारित और आसपास के क्षेत्र पर 5 प्रतिशत आयडीन वाला टिंचर लेपना चाहिये और निस्सृपक पट्टी लगानी चाहिये।

रक्तसंचार ठीक करने के लिये स्थानीय यत्नों के

अतिरिक्त सामान्य (सार्विक) यत्न भी किये जाते हैं: आहत को गर्म कपड़ों, रजाई आदि से ढकते हैं; उसे गर्म चाय, कौफी या अल्कोहल पिलाते हैं। दर्द कम करने की दवा देते हैं।

सार्विक (सांगोपांग) तुषारण लंबे समय तक ठंड में रहने से होता है, जब शरीर जीवन के लिये आवश्यक मात्रा में ताप उत्पन्न करने में असमर्थ हो जाता है। शरीर का तापक्रम 20—22°C तक घटने पर मृत्यु हो जा सकती है। रक्तहानि, फाका, सामान्य दुर्बलता और नशा – ये सब तुषारण को प्रेरित करते हैं। तुषारण के वक्त आदमी पहले तेज कँपकँपी महसूस करता है, फिर क्लांति और नींद महसूस करता है, जिसे रोकना मुश्किल होने लगता है। हाथ-पैर अकड़ने लगते हैं, साँस और धड़कन धीमी पड़ने लगती है। सामयिक सहायता न मिलने पर आदमी नींद में ही मर जाता है।

प्राथमिक उपचार. तुषारग्रस्त आदमी को धीरे-धीरे गर्माहट देनी चाहिये और इसके लिये सभी उपलब्ध साधनों का उपयोग करना चाहिये। सावधानीपूर्वक रगड़ते हुए मालिश करनी चाहिये, या पानी भरे टब में लिटा कर बहुत धीरे-धीरे पानी का तापक्रम बढ़ाना चाहिये।

जब शरीर नर्म और लचकदार हो जाये, तो शीघ्र ही कृत्रिम श्वसन और हृदय की मालिश शुरू करनी चाहिये।

सौरघात और ऊष्माघात

ऊष्माघात शरीर के अतितापन (बहुत गर्म होने) से होता है, जब शरीर उच्च तापक्रम के साथ अनुकूलन नहीं कर पाता। ताप-नियंत्रण में गड़बड़ी भीड़ में खड़े आदमी में उत्पन्न हो सकती है या ऐसी जगह काम करते आदमी में, जहां वात-संचार की ठीक व्यवस्था न हो। (ऊष्माघात का मुख्य कारण है कि गर्म, आर्द्र और निश्चल वातावरण में शरीर पसीने और उसके वाष्पन के सहारे अपने अतिरिक्त ताप को परिवेश या वातावरण में वापस भेजने में असमर्थ हो जाता है। यह स्थिति बहुत पसीना निकल चुकने के बाद भी हो सकती है जैसे लू में। शारीरिक कार्य शरीर में अतिरिक्त ताप उत्पन्न करता है, अतः उपरोक्त परिस्थितियों में शारीरिक कार्य ऊष्माघात को और भी प्रोत्साहित करता है।)

ऊष्माघात की परिस्थितियों में यदि नंगे सिर पर सूर्य-किरणों की सीधी क्रिया को भी मिला लिया जाये, तो सौरघात होता है।

सौरघात के प्रथम लक्षण हैं: सरदर्द, कानों में शोर की अनुभूति, कमजोरी, मतली, सर में चक्कर और प्यास। यदि आदमी अब भी धूप में रहे, तो हालत और भी खराब होती है: नाड़ी क्षीण होती है, लेकिन उसकी गति तेज होने लगती है; साँस सतही हो जाती है, पेट में दर्द और अतिसार शुरू हो जाता है। गंभीर स्थि-

तियों में हुकहुकी, वमन ग्रौर चिंता होने लगती है ; मूर्छा ग्राती है। त्वचा लाल ग्रौर गर्म हो जाती है, पुतलियां विस्फारित होने लगती हैं, तापक्रम 40°C तक बढ़ जाता है।

ऊष्माघात में ये लक्षण सौरघात की ग्रपेक्षा जल्द विकसित होते हैं।

प्राथमिक उपचार. बीमार को छाया में लाना चाहिये, गले ग्रौर छाती को कसे वस्त्रों से मुक्त करना चाहिये। सर, गरदन ग्रौर छाती पर ठंडी पुल्टिस रखनी चाहिये। ठंडा पेय देना चाहिये। यदि बेहोशी हो ग्रौर साँस रुक जाये, तो कृत्रिम श्वसन कराना चाहिये।

कृत्रिम श्वसन ग्रौर हृदय की बाह्य मालिश

वक्ष या उदर के कोटर में स्थित ग्रंगों को ग्रथवा मस्तिष्क को क्षत करने वाली गंभीर चोट शरीर के जीवनावश्यक कार्यों – रक्तसंचार ग्रौर श्वसन – में काफी गड़बड़ी पहुँचा सकती है। इसकी संभावना ग्रौर भी बढ़ जाती है, जब क्षति के साथ भारी रक्तहानि भी होती है।

रक्त-संचार. कुंभी-तंत्र में (नलिकाग्रों ग्रौर कूपों के जाल में) रक्त के ग्रनवरत प्रवाह को रक्तसंचार कहते हैं ग्रौर इसका मुख्य कारण हृदय की संकोचन-क्रिया है।

रक्तसंचार से ही शरीर के सभी ऊतकों तक ग्राक्सीजन तथा ग्रन्य पोषक द्रव्य पहुँचाये जाते हैं ग्रौर द्रव्य-विनिमय के ग्रपशिष्ट उत्पाद शरीर से ग्रलग किये जाते हैं।

हृदय का लयबद्ध संकोचन रक्त-प्रवाह का दो चक्र पूरा कराता है। एक को रक्तसंचार का बड़ा चक्र कहते हैं ग्रौर दूसरे को छोटा चक्र कहते हैं। हृदय चार कक्षों से बना होता है। बड़ा चक्र निचले-बायें कक्ष – बायें निलय (बायें रक्त-क्षेपक कक्ष) – से शुरू होता है। यहां से ग्राक्सीजन-सांद्रित रक्त महाधमनी में प्रविष्ट होता है; महाधमनी विशाखित तथा ग्रपेक्षाकृत छोटी ग्रौर छोटी होती हुई रक्त को कोशिकाग्रों तक पहुंचाती है, जहां द्रव्य-विनिमय होता है: कोशिकाएं ग्राक्सीजन तथा ग्रन्य पोषक द्रव्य ग्रहण करती हैं ग्रौर कार्बन डायक्साइड तथा ग्रपने ग्रन्य ग्रपशिष्ट उत्पाद विलग करती हैं। ये उत्पाद रक्त के साथ मिलते हैं; रक्त क्रमशः बड़ी होती विशेष
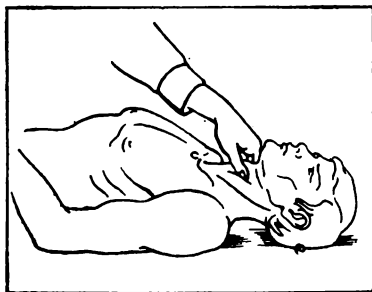
चित्र 51. ग्रैव धमनी का स्पंद पता करना।

नलिकाओं – शिराओं – में भ्रमण करता हुआ हृदय के ऊपरी-दायें कक्ष – दायें अलिंद (दायें रक्त-ग्राहक कक्ष) में पहुँचता है। यहां बड़ा चक्र पूरा हो जाता है। फिर वह निचले-दायें कक्ष – दायें निलय से हो कर फेफड़ों में पहुँचता है, जहां पुनः गैस-विनिमय होता है : रक्त कार्बन डाय-क्साइड से मुक्त होता है और आक्सीजन से सांद्रित होता है। फिर वह हृदय के ऊपरी-बायें कक्ष – बायें अलिंद में आता है और वहां से दायें निलय में। हृदय से फेफड़ों और फेफड़ों से हृदय तक रक्त का परिभ्रमण रक्तसंचार का छोटा चक्र है।

रक्त में आक्सीजन-अणुओं के वाहक हेमोग्लोबिन (शब्दशः – रक्तगुलिका) होते हैं, जो एरीथ्रोसीत, अर्थात लाल रक्त-कोशिकाओं में वर्णक के रूप में उप-स्थित रहते हैं।

रक्तदाब. रक्तसंचार और सामान्य द्रव्य-विनिमय जारी रखने के लिये हृदय के तीव्र संकोचन की आवश्यकता पड़ती है। हृदय के संकोचन से बड़ी धमनियों में 120 — 130 mm Hg (120 — 130 मिलिमीटर ऊँचे पारद-स्तंभ के दाब के बराबर) दाब उत्पन्न होता है (mm Hg को पढ़ें : मिलिमीटर पारद-स्तंभ)। रक्त के इस दाब को महत्तम (मैक्सीमल) कहते हैं। हृत्पेशियों के शिथिलन से दाब 70 — 80 mm Hg तक घट जाता है ; यह निम्नतम रक्त-दाब मिनिमल है। हृदय के कार्य और रक्तसंचार की अवस्था का मूल्यांकन हृत्संकोचन की आवृत्ति (बारं-बारता) और शक्ति के आधार पर संभव है।

श्वासन-अंग निम्न हैं: कंठ (भीतरी भाग), साँस-नली, ब्रोंख (साँसनली की शाखाएं), और फेफड़े (फुप्फुस)। **श्वसन** (साँस) शरीर और परिवेश के बीच गैसीय विनिमय को कहते हैं। वक्ष प्रसारित होता है, इससे फेफड़े फैलते हैं, जिससे उनमें दाब कम हो जाता है, अतः बाहर की हवा उनमें खिंच आती है; इसी प्रक्रिया को साँस लेना (आश्वास) कहते हैं। फेफड़े में ब्रोंख पतली होती हुई असंख्य नन्ही सूक्ष्म केशिका-नलियों में विशाखित होती जाती हैं, जिनके बंद सिरे बुलबुलों की याद दिलाते हैं; इन्हें आलवेओल या वर्त्स (कटोरियां) कहते हैं। हवा इन 'बुलबुलों' में पहुँचती है। 'बुलबुलों' की दीवारें बहुत पतली होती हैं, जिनमें असंख्य अतिसूक्ष्म रक्तवाही कुंभियां लिपटी होती हैं। यहीं पर गैसों का विनिमय होता है: शिराओं से फेफड़ों में आया हुआ रक्त कार्बन डायक्साइड छोड़ता है और आक्सीजन से सांद्रित होता है।

साँस छोड़ने पर (निश्वास से) फेफड़ों से हवा निकल आती है, जिसमें आक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है, पर कार्बन डायक्साइड की मात्रा बढ़ जाती है।

श्वसन का नियमन (नियमबद्ध संचालन) मस्तिष्क के श्वसन-केंद्र द्वारा स्वचल रूप से होता रहता है। इस केंद्र की नर्व-कोशिकाएं रक्त में घुली कार्बन डायक्साइड गैस की सांद्रता का पता लगाती रहती हैं; सांद्रता बढ़ने पर साँस तेज हो जाती है।

आहत की अवस्था की गंभीरता इस बात पर निर्भर

करती है कि रक्तसंचार और श्वसन में किस हद तक गड़बड़ी हुई है।

उपचारकर्त्ता को स्थिति का शीघ्र मूल्यांकन करना आना चाहिये, ताकि वह आवश्यक कदमों की निर्विलंबता, उनके क्रम और प्रकार निर्धारित कर सके।

आहत मृत है या जीवित?

इस प्रश्न का जवाब रक्तसंचार और श्वसन की अवस्था का मूल्यांकन करने वाले चंद सरल परीक्षणों की सहायता से दिया जा सकता है (जीवनान्वेषण)।

हृदय के संकोचन का पता वक्ष के वाम क्षेत्र पर चुचुक के स्तर पर कान सटा कर धड़कन सुनने से लगता है। यह रश्मिक, ग्रैव या ऊरुक जैसी बड़ी धमनियों के स्पंद को अनुभव कर के भी पता किया जा सकता है। जब हृत्संकोचन क्षीण होते हैं, तब स्पंद-तरंगें शरीर के परिसरीय भागों तक नहीं पहुँच पातीं, अतः रश्मिक या ऊरुक धमनियों में स्पंदन का अनुभव नहीं भी हो सकता है। गले में स्थित ग्रैव धमनी हृदय के निकट होती है, अतः उसमें अक्सर हृदय के अति क्षीण संकोचन से भी स्पंदन होता रहता है। धमनियों का स्पंदन इस बात का द्योतक है कि हृदय काम कर रहा हैं।

ग्रैव धमनी का स्पंदन अनुभव करने की विधि निम्न है: ढालवत ग्रंथि की कुरकुरी (काकल, टेंटुआ) का एक तरफ अंगूठे और दूसरी तरफ तर्जनी तथा मध्यमा से पकड़ते हैं, फिर उंगलियों को पार्श्व दीवारों पर फिसलाते हुए पीछे मेरुदंड की दिशा में ले जाते हैं। यदि

हृदय में संकोचन होगा तो उंगलियों के सिरों के नीचे ग्रैव धमनी का स्पंद (धक्का) महसूस हो जायेगा (चित्र 51) ।

श्वसन का निर्धारण बाह्यतः वक्ष-पिंजर की लयबद्ध गति के अवलोकन से होता है : साँस लेते वक्त वक्ष प्रसारित होता है और पिंजर ऊपर की ओर उभरता है ; साँस छोड़ते वक्त वह नीचे दबता है ।

यदि आहत की कमजोरी के कारण उसकी श्वास-गति आँखों से अवलोकित नहीं होती, तो उसके मुँह और नाक के पास दर्पण की सतह लानी चाहिये । उसकी झफायी हुई (भाफ से धूमिल) सतह श्वसन की उपस्थि-ति का संकेत होगी ।

जीवित आदमी की आँखों की पुतलियां (कनीनिकाएं) प्रकाश पर स्पष्ट प्रतिक्रिया करती हैं । आँख पर टार्च जलाने से पुतली में प्रकाश का मार्ग संकोचित होने लगता है । दिन में यह परीक्षण टार्च के बिना भी कर सकते हैं : हथेली से आड़ कर के आँखों के सामने अंधेरा कर लेते हैं, फिर फुर्ती से हाथ हटा लेते हैं – कनीनिका का संको-चन इस बात का संकेत होगा कि आदमी जीवित है । गहरी मूर्छा की अवस्था में प्रकाश के साथ कनीनिका की प्रतिक्रिया नहीं भी हो सकती है ।

हृदय और साँस के रुकने से शरीर में द्रव्य-विनिमय में तेजी से गड़बड़ियां उत्पन्न होने लगती हैं । शरीर की कोशिकाओं तक आक्सीजन पहुँचाने वाला रक्त-प्रवाह थम जाता है, आक्सीजन की भूख के कारण उनकी मृत्यु

होने लगती है। लेकिन आदमी की मृत्यु क्षण भर में नहीं हो जाती।

मस्तिष्क की उच्च संरचना वाली नर्व-कोशिकाएं आक्सीजन की कमी के प्रति विशेष संवेदनशील होती हैं। वे हृदय रुकने के 5—7 मिनट बाद ही मृत होने लगती हैं। यदि इस तथाकथित तल्पिक मृत्यु की अवधि में रक्त-संचार और साँस पुनः शुरू की जा सके, तो आदमी को बचाया जा सकता है। इससे अधिक समय बीतने पर, अर्थात्, हृदय रुकने के 8—10 मिनट बाद मस्तिष्क की नर्व-कोशिकाओं में अनुत्क्रमणीय परिवर्तन विकसित होने लगते हैं; जीवलोचनी मृत्यु का चरण शुरू हो जाता है और आहत के प्राण लौटाना असंभव हो जाता है।

मृत्यु के लक्षण सापेक्षिक और निरपेक्ष होते हैं। यदि हृदय की धड़कन महसूस नहीं की जा सकती, साँस रुक जाती है, सूई चुभाने पर भी आहत कोई प्रतिक्रिया नहीं करता, प्रकाश पर पुतलियों की प्रतिक्रिया नकारात्मक है, तो भी बचाने का काम छोड़ना नहीं चाहिये; उसे पूरी तरह से तबतक चालू रखना चाहिये, जबतक उसकी व्यर्थता में पूर्ण विश्वास न हो जाये। इसके लिये मृत्यु के निरपेक्ष लक्षणों पर ध्यान देना चाहिये: शृंगि-पटल (शृंगिका; आँख के कोये की सतह पर कड़ी पार-दर्शक परत) का शुष्क और धूमिल होना, शरीर का ठंडा होना, अँकड़ना, शरीर पर शव-चित्तियों का उगना। उंगलियों से आँख के पार्श्वों को दबाने से पुतली एक वि-शेष ढंग से सिकुड़ती है, 'बिल्ली की आँख' जैसी।

शव-चित्तियां मृत्योपरांत ही उत्पन्न होती हैं: रक्तसंचार रुक जाता है और रक्त अपने भारवश शरीर के निम्नस्थ अंगों की ओर बह कर वहां जमा होने लगता है; यही रक्त बाहर से धब्बों का आभास देता है। पीठ के बल लेटे मृतक में नीलाभ शव-चित्तियां पँखुड़ों, कमर और नितंबों पर दृष्टिगोचर होती हैं; पेट के बल लेटे मृतक में—चेहरे, वक्ष और हाथ-पैर पर।

शव में अँकड़न मृत्यु के 2—4 घंटे बाद उत्पन्न होती है, जब पेशियां कड़ी होने लगती हैं; इसी की वजह से सर घुमाना या हाथ-पैर मोड़ना या सीधा करना असंभव होता है।

साँस रुकने के बाह्य कारण भी हो सकते हैं, जो श्वसन-मार्ग में वायु की गति अवरोधित कर देते हैं। इनमें निम्न की गणना होती है: मूर्छावस्था में जीभ का कंठ में गिरना; मुँह, कंठ या साँस-नली अवरुद्ध करने वाली किसी परज वस्तु की उपस्थिति, जैसे—वमन-द्रव्य, पानी, गंदगी, कीचड़, विभिन्न प्रकार के ठोस द्रव्य या भोजन आदि।

मूर्छा में जीभ और·कंठ की पेशियां श्लथ (ढीली, शिथिल) हो जाती हैं, अतः चित लेटे मूर्छावस्थित आदमी की जीभ की जड़ नीचे सरक आती है और साँस-नली का मुँह बंद कर देती है। इस स्थिति में साफ दिखता है कि वक्ष साँस लेने के लिये कैसे प्रयत्न कर रहा है, लेकिन साँस लेते और छोड़ते वक्त जो अक्सर एक विशेष

ध्वनि होती है, वह सुनाई नहीं देती; हवा का प्रवाह भी महसूस नहीं होता।

यही बात उस स्थिति में भी प्रेक्षित होती है, जब साँसनली किसी परज वस्तु से अवरुद्ध हो जाती है। ऐसी परज वस्तु अक्सर वमन-द्रव्य होती है, जो साँस के साथ भीतर चला जाता है, या पानी और कीचड़ होता है, जो डूबते हुए आदमी की साँस के साथ साँस-नली में पहुँच जाता है। कंठ में जीभ के सरकने से या किसी परज वस्तु के पड़ने से यदि ऊपरी श्वसन-मार्ग का आंशिक अवरोध होता है, तो हुकहुकी के साथ शोर भरी साँस सुनायी देती है, साँस लेते वक्त खरखराहट की आवाज आती है।

श्वसन-गति का क्षीण होना, त्वचा और होठों का
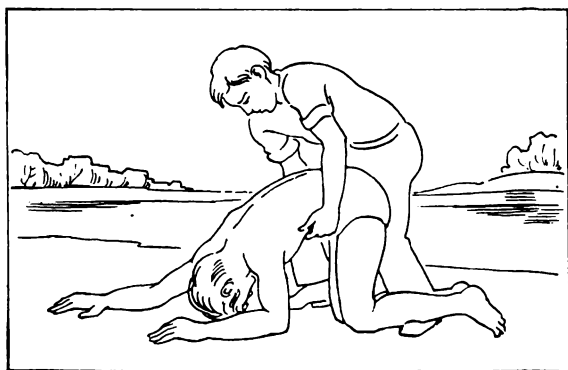
चित्र 52. डूबने पर फेफड़ों से पानी निकालना।

चित्र 53. जीभ को कंठ में गिरने से रोकना: *a*) लस्त जीभ की जड़ कंठ का मुंह बंद कर देती है ; *b*) निचले जबड़े को आगे खिसकाने पर जीभ भी खिसक आती है और ऊपरी श्वसन-मार्ग निर्बाध हो जाता है (*c*)।
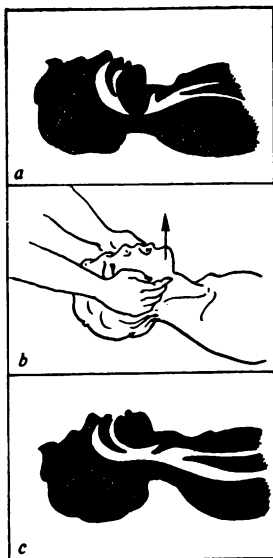
नीला पड़ना, नाड़ी का 110 स्पंद प्रति मिनट या इससे भी तेज होना – ये सब फेफड़े के सहायक संवातन अर्थात् **कृत्रिम श्वसन** की आवश्यकता के संकेत हैं।

कृत्रिम श्वसन शुरू करने के पहले उपचारकर्ता को यह देख लेना चाहिए कि श्वसन-मार्ग में कोई अवरोध तो नहीं है। मुंह से वमन-द्रव्य साफ कर देना चाहिये ; यदि आदमी को डूबने से बचाया गया है, तो पहले फेफड़ों में से पानी निकाल लेना चाहिये।

डूबने से बचाये गये आदमी को किसी पीपे या मोटे बेलन पर छाती के बल लिटाना चाहिये। उपचारकर्ता

उसे अपने घुटनों पर भी लिटा सकता है। सहायतार्थी की धड़ का ऊपरी हिस्सा नीचे की ओर झुका होना चाहिये (चित्र 52)। इस स्थिति में हाथों से उसके वक्ष-पिंजर को दबाना चाहिये। फेफड़ों से पानी निकालने का प्रयत्न लंबे समय तक नहीं करना चाहिये। संभव है कि वहां पानी हो ही नहीं, अतः बिना समय बर्बाद किये कृत्रिम श्वसन देने का काम शुरू कर देना चाहिये।

कृत्रिम श्वसन की सबसे कारगर विधि है मुंह या नाक से होकर फेफड़ों में हवा फूंकना। इसमें उपचार-कर्ता अपने फेफड़ों से निकाली गयी हवा (निश्वसन) का उपयोग करता है। उसमें आक्सीजन गैस पर्याप्त मात्रा में उपस्थित रहती है और वह आहत की जीवन-रक्षा के काम आ सकती है।

आहत के श्वसन-मार्ग में हवा के निर्बाध गमन के लिये श्रेष्ठ परिस्थितियां उत्पन्न करने के लिये उसे पीठ के बल लिटाते हैं, सर पीछे की ओर झुकाते हैं और निचले जबड़े को आगे की ओर खिसकाते हैं (चित्र 53)। सर को पीछे की ओर झुकाने पर 80% मूर्छित आहतों में जीभ की जड़ कंठ की पिछली दीवार से अलग हो जाती है और कंठ तथा साँस-नली का मुंह खोल देती है।

आहत का सर पीछे झुकाने के लिये उपचारकर्ता एक हाथ उसकी गरदन के नीचे रखता है और दूसरे हाथ से ललाट को दबाता है। इससे आहत का मुंह भी खुल जाता है। यदि इस विधि से श्वसन-मार्ग पूरी तरह नहीं खुल जाता, अर्थात् हवा फेफड़ों में नहीं पहुँचती है तथा
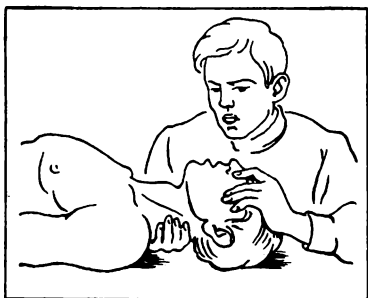
चित्र 54. मुंह से मुंह में फूंक कर कृत्रिम श्वसन देने की विधि। उपचारकर्ता आहत के सर को पीछे झुका कर बायें हाथ से उसकी नाक बंद कर लेता है और खुद गहरी साँस लेता है।
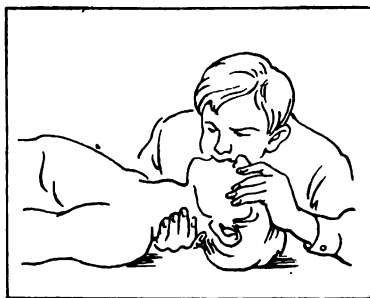
चित्र 55. आहत के खुले मुंह पर अपने होंठ अच्छी तरह चिपका कर उपचारकर्ता अपने फेफड़ों की हवा फूंक कर आहत के फेफड़ों में पहुँचाता है।

वक्ष-पिंजर ऊपर नहीं उभरता (फूलता) है, तो निचले जबड़े को आगे की ओर बढ़ाना चाहिये। इसकी विधि निम्न है: पीठ के बल लेटे आहत के सिरहाने खड़ा हो कर निचले जबड़े के दोनों पार्श्वों के कोनों को प्रत्येक हाथ की चार-चार उंगलियों से पकड़ना चाहिये (चित्र 53b)। अंगूठों को कपोलास्थियों (आँखों के नीचे स्थित गालों की हड्डियों) पर टेकते हुए निचले जबड़े को तबतक आगे खिसकाना चाहिये, जबतक निचले दाँत ऊपरी दाँतों से आगे न आ जायें।

सर पीछे की ओर झुकाने से अक्सर जीभ कंठ में नहीं सरकती और श्वसन-मार्ग के खुलने की परिस्थितियां उत्पन्न हो जाती हैं।

जबड़ों के स्पाज्म के कारण मुंह को भीतर से साफ करना और कृत्रिम श्वसन देना कठिन हो जाता है। मुंह खोलने के लिये विभिन्न विधियों का उपयोग होता है। एक विधि निम्न है: तर्जनियों को गाल के भीतर डाल कर उनके सिरों को अंतिम दाढ़ों के पीछे ले जाते हैं और उंगलियों को घूर्णन-गति देते हुए जबड़ों के बीच घुसा कर उन्हें अलग करने की कोशिश करते हैं।

श्लथ बीमार का मुंह एक पर एक चढ़ी दो उंगलियों से खोलते हैं और ठुड्डी पर दबाव देकर निचला जबड़ा अलग करते हैं।

इसके बाद उपचारकर्ता बायें हाथ की दो उंगलियों से आहत की नाक बंद करता है, गहरी साँस लेता है और उसके मुंह से अपना मुंह अच्छी तरह सटा कर

हवा उसके फेफड़ों में फुंकता है, यह आहत के लिये 'साँस लेना' हुआ। साँस छोड़ने का काम स्वतः हो जाता है: वक्ष-पिंजर और महाप्राचीरा की पेशियों के शिथिल होने से पसलियां स्वयं नीचे बैठने लगती हैं (चित्र 54, 55)।

बच्चों में हवा फुंकने का काम एक ही साथ मुंह और नाक दोनों से किया जा सकता है। फूंकने की गति लयबद्ध रूप से प्रति मिनट 16—20 बार की दर से होनी चाहिये।

रुके हुए हृदय को कार्यरत करने के लिये **हृदय की बाह्य मालिश** प्रयुक्त होती है। इसमें हृदय को लयबद्ध रूप से दबाया जाता है ताकि उससे रक्त निकल कर कुंभियों (नलिकाओं, कूपों आदि) में पहुँच जाये। इस तरह रक्तसंचार पुनर्स्थापित हो जाता है।

हृदय हृत्कोटर के मध्य में रीढ़ और उरोस्थि के बीच होता है (उरोस्थि वक्ष पर ऊपर से नीचे तक की हड्डी को कहते हैं, जिससे दोनों तरफ पसलियां निकलती हैं)। यदि उरोस्थि पर कुछ कस कर दबाया जाये, तो पसलियों तथा कुरकुरियों (पतली, मुलायम हड्डियों; उपास्थियों) की प्रत्यास्थता (लोच) के कारण उरोस्थि रीढ़ की ओर 5 से 6 सेंटीमीटर तक नीचे दब आती है और हृदय को दबाती है, जिससे हृदय का कृत्रिम संकोचन होता है। रक्त बायें निलय से 'निचुड़ कर' महाधमनी में आता है और वहाँ से सारे शरीर में फैलता है, विशेषकर मस्तिष्क में तथा किरीटी कुंभियों में, जो हृत्पेशियों का पोषण

करती हैं (किरीटी कुंभियों में हृदय को किरीट की तरह लपेट कर रखने वाली धमनी और उसकी शाखाएं-प्रशाखाएं आती हैं, जो हृत्पेशी-कोशिकाओं तक रक्त पहुँचाती हैं)। साथ ही साथ रक्त हृदय के दायें निलय से निकल कर फेफड़ों में पहुँचता है और आक्सीजन से सांद्रित होता है (चित्र 56)।

जब उरोस्थि से दाब हट जाता है, वक्ष-पिंजर अपनी
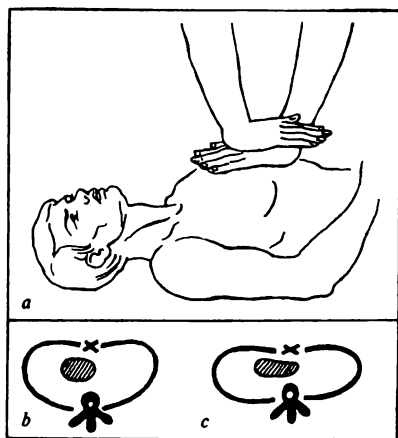
चित्र 56. *a*—हृदय की बाह्य मालिश; *b*, *c*—वक्ष के अनुप्रस्थ काट; *c*—उरोस्थि को दबाने पर हृदय के कोटर से रक्त निकल कर कुंभियों में प्रविष्ट होता है; *b*—दबाव दूर करने पर हृदय प्रसारित होता है और पुनः रक्त से भर जाता है।

प्रत्यास्थता के कारण प्रसारित होता है और रक्त चुस कर पुनः हृदय में आता है।

हृदय की बाह्य मालिश करते वक्त चंद नियमों का पालन करना चाहिये। दाबने का स्थान इस प्रकार चुनना चाहिये और दाबने के लिये इतना ही बल लगाना चाहिये कि पसलियां न टूट जायें। स्वयं उरोस्थि भी टूट सकती है, पर ऐसा बहुत कम होता है।

उरोस्थि के निचले सिरे से दो अंगुल ऊपर एक हथेली रखते हैं और उसी पर दूसरी हथेली रखते हैं। उरोस्थि को रीढ़ की ओर इस प्रकार दबाते हैं कि वह 5—6 सेंटीमीटर नीचे दब जाये; इस स्थिति में उसे करीब आधा सेकेंड तक रखते हैं, फिर छोड़ देते हैं। ध्यान रहे कि पाँच-छे सेंटीमीटर नीचे तक वयस्क आदमी की ही उरोस्थि दबायी जाती है।

उपरोक्त विधि से हृदय को एक लय के साथ मिनट में 60—70 बार से कम नहीं दबाते हैं और साथ ही कृत्रिम साँस भी देनी चाहिये। इससे रक्तसंचार उस हद तक पहुँच सकेगा कि आहत का जीवन बचा रहे। बच्चे के हृदय की मालिश सिर्फ एक हाथ से करते हैं; नवजात (एक महीने तक के) तथा दूधमुँहे (साल भर तक के) बच्चे की–दो उंगलियों के सिरों से। लेकिन इनके लिये दबाने की आवृत्ति प्रति मिनट 100—120 बार तक बढ़ायी जा सकती है। यदि हृदय की मालिश सही होगी और उरोस्थि पर्याप्त बल से दबायी जायेगी तो ग्रैव

तथा ऊरुक धमनियों में कृत्रिम रूप से उत्पन्न स्पंद अनुभव किये जा सकेंगे।

हर स्थिति में, जब हृदय और श्वसन गंभीर चोट के कारण रुक जाते हैं लेकिन जीवलोचनी मृत्यु के निर-पेक्ष लक्षण दृष्टिगोचर नहीं होते, संजीवन-कार्य तुरंत शुरू कर देना चाहिये। **संजीवन** का लक्ष्य है कृत्रिम श्वसन द्वारा फेफड़ों में गैस-विनिमय बनाये रखना तथा हृदय की मालिश द्वारा उसकी कार्यशीलता पुनर्स्थापित करना।

हृदय की बाह्य मालिश द्वारा सामान्य रक्तसंचार का 10 से 30 प्रतिशत तक रक्त शरीर में वापस किया जा सकता है, जो मस्तिष्क में रक्तसंचार के लिये पर्याप्त होता है, प्रमस्तिष्क-वल्कुट में नर्व-कोशिकाओं की मृत्यु रोकने में सक्षम होता है।

संजीवन-कार्य से इतना अतिरिक्त समय अवश्य मिल जाता है, जिसमें आहत को विशेषज्ञों से सहायता दिलाने के लिये उसे किसी चिकित्सा-प्रतिष्ठान तक पहुँ-चाया जा सके।

ऐसी परिस्थितियों में, जब चोट जीवन के लिये बिल्कुल प्रतिकूल नहीं होती, समय पर सही मालिश से हृदय का कार्य पुनर्स्थापित किया जा सकता है।

संजीवन की विधि और विधान. आहत को टेबुल, चौकी या फर्श जैसी किसी कड़ी सतह पर चित लिटाते हैं, उंगलियों से उसका नाक बंद कर के मुँह से फेफड़ों में कुछेक बार हवा फूंक लेते हैं। साथ ही साथ हृदय की मालिश भी शुरू करते हैं। यदि दो व्यक्ति उसे

सहायता पहुँचा रहे हैं, तो उनमें से एक आदमी हृदय की मालिश करता है और दूसरा – कृत्रिम श्वसन देता है। वक्ष को 5 बार दबाने पर फेफड़ों में 1 बार हवा फूंकी जाती है। यदि संजीवन-कार्य एक आदमी अकेला कर रहा है, तो वह 15 बार वक्ष दबाने के दौरान 2 बार हवा फूंक सकता है।

हर 2 मिनट बाद अल्पकालीन विराम डालते हैं – यह देखने के लिये कि हृदय स्वयं अपना काम करने लायक हुआ या नहीं।

मालिश की कारगरता के लक्षण हैं: ग्रैव तथा ऊरुक (गले और जांघ की) धमनियों में स्पष्ट स्पंद-तरंगें; त्वचा और श्लेष्मल झिल्लियों का गुलाबी होना, पुतलियों का संकोचन। यदि सर को पीछे झुकाने और फेफड़ों में कस कर हवा फूंकने का काम सही ढंग से किया जायेगा, तो इसके अनावश्यक होने पर भी इससे कोई खतरा नहीं होगा। लेकिन श्वसन-मार्ग के अवरुद्ध होने पर फूंकी गयी हवा जठर में जमा हो कर उसे कस कर फुला दे सकती है। अपने-आप में यह भी खतरनाक नहीं है, पर इससे वमन हो सकता है। वमन-द्रव्य श्वसन-मार्ग में प्रविष्ट हो कर उसे और भी अवरुद्ध कर सकता है। इसीलिये 'मुंह से मुंह में फूंनेफूं' की विधि से कृत्रिम श्वसन के दरमियान यदि पेट का ऊपरी अर्ध फूलता हुआ दिखायी दे, तो जठर में से हवा निकालने का काम करना चाहिये। इसके लिये नाभि और उरोस्थि के निचले सिरे के बीच पेट को दबाया जाता है।

अनुक्रमणिका